उस जन
अरघान (कविता संग्रह : 1984)
सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

राजेन्द्र यादव

साहित्य वाणी
इलाहाबाद-६

प्रकाशक ● साहित्यवाणी
२८, पुराना अल्लापुर,
इलाहाबाद-६

मुद्रक ● शिव प्रिन्टर्स
आर्य नगर, इलाहाबाद

मूल्य ● २५.०० रुपये

प्रथम संस्करण ● १९८४ ईसवी

अरघान (कविता संग्रह : 1984)
-50, गोरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

माँ
और छोटे मामा जी
के लिए

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

क्रम

- शुरुआत : 9
- परजीवी : 19
- जड़ें : 32
- दूसरा कदम : 39
- बीच-बचाव : 49
- इस दौरान : 59
- आत्म-मुग्ध : 70
- विसंगति : 78
- रिश्ता : 93
- खाना-पूर्ति : 109

□□

शुरुआत

देखने वाले को लग सकता है कि अचानक उसे सौन्दर्यबोध हो गया है। उसने अपने घर के बाहर वाले कमरे की दीवारों पर सुन्दर कैलेन्डर टाँग दिये हैं। धराशायी होते हुए पुराने सोफे को चमकाने का असफल प्रयास किया है। बे-तरतीब पड़ी किताबों को लाइब्रेरी की तरह सजाने की भी कोशिश की है। मुख्य टेबिल पर कुछ सामयिक पत्रिकाएँ रख दी हैं। यह सब उसने अपनी इच्छा से नहीं किया है। सभी क्रियायें एक आदेश के तहत उसने की हैं। जब माँ ने कहा कि उनके आने के पहले कम-से-कम बाहर के कमरे को ही व्यवस्थित कर दो तो एक बार माँ के कहने पर उसने ध्यान नहीं दिया पर जब माँ ने कई बार उसी बात को एक चिढ़ के साथ दोहराया तो उसे बेमन से जुटना ही पड़ा। हालांकि उसे काम करते वक्त बराबर यह मुश्किल लग रही है कि नष्ट होती हुई वस्तुओं को वह किस तरह व्यवस्थित करके एक इज्जतदार स्थिति तक पहुँचाये। पर माँ को वह चिढ़ाना नहीं चाहता इसलिए काफी सोच-सोच कर कमरे की स्थिति को सुधार रहा है और साथ ही खीझता भी जा रहा है कि यह काम फटे में चिंदी लगाने समान ही है।

अन्दर किचन में उसकी माँ खुट्टर-खुट्टर लगी हुई है काम में। वह ... के कमरे में है। दीवारों पर बरसाती सीलन आ गई है। वह लगातार

कर रहा है कि जो सौंदर्यबोध उसने अपने अन्दर पैदा किया है कहीं यह सोचना उसमें बाधक न हो। एक भद्दी सी गाली देते हुए उसे दूर करने की सोच रहा है। पर समझ में कुछ नहीं आता। सर को झटक कर दूसरी बात में ध्यान लगाने की कोशिश करता है। सामने रखी घड़ी पर नजर जाती है। दस पर काँटा फँसा दिखता है। आज उसके फूफा जी आये हैं गाँव से। उनकी एक लड़की है जिसकी शादी के विषय में वे बहुत परेशान रहते हैं। यहाँ शहर में उसकी माँ ने एक लड़का देखा है। लड़का योग्य है उसकी माँ कहती है। इस आशय का पत्र माँ ने उसके फूफा जी को लिखा था। फूफा जी बहुत दिनों से उसकी माँ के पीछे पड़े थे कि आप शहर में रहती हैं और आपको बहुत अनुभव है। आप ही लड़की का उद्धार कर दीजिये। उसके फूफा जी को इस विषय में मध्यस्थता के लिए उसकी माँ ही अनुकूल लगीं। उसकी माँ के विषय में समाज में यह विख्यात था कि वे किसी-न-किसी प्रकार इस तरह की परेशानियों को हल कर देती हैं।

वह अपनी माँ के बारे में कभी सोचता है तो पाता है उसकी माँ परेशानी नामक बीमारी की औषधि बनती जा रही है। जी-जान से जुटकर लोगों के काम कर देती हैं। लोगों की परेशानियाँ दूर करने में जो खुद पर मुश्किलें आती हैं उसकी वह उस वक्त परवाह नहीं करतीं। पर बाद में खीझती रहती हैं और अब तो यह सब उसकी माँ की आदत में शामिल हो गया है। वह खुद इस तरह की आदतों के सख्त खिलाफ है।

पहले उसकी माँ एक राजनीतिक संगठन में सक्रिय सदस्य थीं। वह इतनी अधिक सक्रिय थीं कि लोगों को उनकी सक्रियता पर अविश्वास हो गया था। फिर क्या था, उसकी माँ समझौता करने वाली तो थी नहीं अतः संगठन से त्याग-पत्र दे दिया। वहाँ से मुक्ति के बाद भी सक्रियता बरकरार है। वह पहले माँ के और अपने भविष्य का ताल-मेल बिठाया करता था। माँ के साथ-साथ उसे अपना भविष्य भी उज्ज्वल दिखता था। तब वह अपने-आपको एयर-कन्डीशंड रूम में आराम करते पाता था। उसके सपने तो तब चकनाचूर हुए जब माँ ने "डेप्लोमेट" बनने से इंकार कर दिया। अब "गहरी" निद्रा आती है। सपने

उस जनपद का ——————
परवाल (कविता संग्रह : 1984)
9, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—4700(

सौ कोसों दूर हैं। अब एक नया दृश्य उसके सामने है। उसके घर की आँगन की दीवार पर एक कउवा रोज जूठन खाने के उद्देश्य से बैठकर कॉव-कॉव करता था। एक दिन उसने कउए को पत्थर मार दिया। तब से कउवा भी "डिप्लोमेट" हो गया है। बैठा रहता है पर कॉव-कॉव बन्द है। उसके और कउवे के सम्बन्ध सजीदगी मे बदल गये हैं।

साढ़े दस बज गये हैं और उसने अपने तथाकथित ड्राइंग रूम को पूरी तरह व्यवस्थित कर लिया है। उसके फूफा जी के मंत्रोच्चार की आवाजें आ रही हैं। शायद वे नहा चुके है। उनके मंत्रोच्चार का ढंग उसे बेहद बनावटी लग रहा है। उसे बिसन की होटल जाना है कलाकंद लेने। आज लडके के पिता उसके फूफा जी से शादी के संदर्भ मे विचार-विमर्श करने वाले हैं। उसे जल्दी नही है क्योंकि उसे मालूम है कि लड़के के पिता भारतीय हैं और भारतीयता का बड़ी निष्ठापूर्वक पालन करते हैं। वह मुस्कुराते हुए सोचता है कि अन्दर फूफा जी भी तो वही कर रहे हैं।

वह अन्दर किचन में जाता है। माँ सब्जी छौंक रही है। वह कलाकंद के लिए माँ से पैसे की मांग करता है। फूफा जी का मंत्रोच्चार पूर्ववत् जारी है। मंत्रोच्चार करते हुए वे टावेल पर चड्ढी पहन रहे हैं। उसे उनका इस तरह चड्ढी पहनने का ढंग बहुत बुरा लगता है। उसके द्वारा पैसे मांगे जाने पर फूफा जी का चेहरा भयभीत दिखने लगा है। उसकी माँ उनकी ओर देखकर उनके भय को बढा रही हैं। वे धीरे से उसकी माँ से कहते हैं—"पैसे आप दे दें। मुझसे बाद मे ले लीजिएगा।"

उसे माँ के विवशताग्रस्त चेहरे को देखकर दया आ रही है। वह समझता है उसकी दया निरर्थक है। पर आ रही है। वह उसे रोक नही सकता। पैसे निकालने के लिए माँ अपने झोले की ओर कदम बढ़ाती हैं। उसे माँ के कदम धम-धम पड़ते से लगते हैं। उसने देखा फूफा जी के चेहरे पर निश्चिन्तता व्याप गई है। माँ ने उसे पैसे दे दिये हैं। वह बाहर आ जाता है। इच्छा होती है कलाकंद लेने न जाये और एक-दो दिन के लिए कहीं भाग जाये। पर वह ऐसा

नहीं कर पाता। बाहर उसकी साइकिल लुज पड़ी है। दोनों चक्के पंक्चर हैं। वह पैदल ही चल देता है। गली में भिंगियों के बच्चे नालियों में टट्टी कर रहे हैं। तीव्र दुर्गन्ध नाक में घुस रही है। उसमें दुर्गन्ध के प्रति दुराभाव नहीं है। वह सब कुछ सूंघता हुआ मुख्य सड़क पर आ गया है।

सड़क पर निर्मला बाई गर्ल्स हाई स्कूल की बड़ी-बड़ी छात्राएँ बस्तों से लैस स्कूल जा रही हैं। उनके डील-डौल को देखकर उसे लगता है सब कुछ समय के प्रतिकूल हो रहा है। बोझिल बसों का ताता गुजरता जा रहा है। साइकिलों की घंटियाँ कंभट पैदा कर रही हैं। उसके कानों के पर्दे मजबूत हैं इसे फर्क नहीं पड़ रहा है।

होटल से आधा किलो कलाकंद तुलवा के वापिस आता है। तब तक माँ आलू-पोहा बना चुकी है। फूफा जी कुर्ता-पजामा पहन कर तैयार से खड़े हैं। उनके चेहरे से इन्तजारी टपक रही है। लड़के के पिता का पता नहीं है। घड़ी पर उसकी नजर जाती है ग्यारह बजे हैं। फूफा जी चिन्तित से सोफे पर बैठ गये हैं। उनकी चिन्ता देखकर मन-ही-मन न जाने क्यों उसे खुशी हो रही है। पूरे कमरे में उदासी भर गई है। अचानक फूफा जी उससे पूछते हैं—तुम्हें उनका (लड़के के पिता का) घर मालूम है ? वह हाँ कह देता है और सोचता है कि उसे तो लड़के के घर का इतिहास भी मालूम है और ये सिर्फ पता पूछ रहे हैं। उसे मालूम है यदि वह स्वत: कुछ बतायेगा तो वे बातें फूफा जी के लिए अविश्वसनीय होंगी। वह आगे चुप ही रहता है। पर फूफा जी के पास ही सोफे पर बैठ जाता है इस आशा से कि शायद वे आगे कुछ पूछें।

अन्दर कप-बसी धोने की आवाजें आ रही हैं। शायद उसकी माँ चाय बनाने की आवश्यक सामग्री जुटाने में लगी है। वे आवाजें कमरे के सन्नाटे को तोड़ रही हैं। फूफा जी बीड़ियाँ फूँक रहे हैं। बहुत उद्विग्न हैं। फूफा जी का परिवार उसकी आँखों के सामने आ जाता है। उनकी चार लड़कियाँ हैं और दो नामाकूल लड़के। यह तीसरी लड़की है जिसकी शादी के सिलसिले में उनका यहाँ आना हुआ है। उसे मालूम है दो लड़कियों की शादियाँ करके आपे

उसे जनपद का आदमी ...
प्रधान (कविता संग्रह : 1984)
6, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

टूट चुके है फूफा जी । यह टूटने का तीसरा दौर है । नही मालूम चौथी लडकी की शादी वे कर पाते हैं या नहीं । गाँव में जन्म से रह रहे है । उनको अपनी घिसटती जिन्दगी मे एक सहारा गाँव की ग्राम पंचायत की सदस्यता स्वरूप मिला । सहारे का सही इस्तेमाल वे नही कर पाये । उन्हें इससे लाभ नही है । शादियों मे खुद की जमीन बेचते रहे हैं । उनका घर दिनो-दिन टुटपुंजिया होता गया है । अक्सर गाँव जाने पर वह देखता है पंचायत के दूसरे सदस्यो के घर ठाट-बाट दिखती है पर फूफा जी के घर उसे कुछ नही दिखता । गाँव में उसके फूफा जी "सभ्य आदमी" के नाम से प्रतिष्ठित हैं । वहाँ जो भी फूफा जी के बारे मे यह कहता तो वह उनके विषय मे सोचते हुए महसूस करता कि सभ्यता आदमी को टुटपुंजिया बनाती है और उसके घर मे चार-चार लड़कियाँ पैदा कर देती है ।

फूफा जी के खड़े होने पर उसका ध्यान उनकी ओर जाता है । वे कमरे में बेसब्री से टहलने लगते हैं । वह जहाँ बैठा है उसके ठीक सामने खिड़की है । खिडकी के परे रामलीला मैदान की ओर सरकती कच्ची सडक दिख रही है । कच्ची सड़क पर उसे लड़के के पिता भैरवप्रसाद जी आते दिखते है । वह भी खडा हो जाता है और फूफा जी को उनके आने की सूचना देता है । यह सुनकर अचानक फूफा जी के चेहरे से उद्विग्नता अदृश्य हो जाती है । वे अपने कुर्ते का अवलोकन करते हुए घर के प्लेटफार्म पर पहुँच गये हैं । वह भी उनके पीछे-पीछे वहाँ पहुँच गया है । प्लेटफार्म का उखडता हुआ प्लास्टर उसे हीन बना रहा है । भैरवप्रसाद जी बिल्कुल सामने पहुँच गये है । उखड़े हुए प्लास्टर को वह अपने पैरो से ढँकने का असफल प्रयास कर रहा है । भैरवप्रसाद जी के चेहरे पर गम्भीरता है । वे खादी का कुर्ता और धोती पहने हुए हैं । फूफा जी उन्हे नमस्कार कर रहे हैं । वह फूफा जी और भैरवप्रसाद जी के साथ अंदर आ गया है । वे लोग बैठ गये हैं । उसकी माँ दरवाजे के पर्दे के पीछे आकर खड़ी हो गई है । फूफा जी भैरवप्रसाद जी के बीच औपचारिक बातें हो रही हैं । उसे आश्चर्य होता है कि उनके चहरो पर ऐसा कोई भाव नहीं है कि दस मिनट बाद वे किन्ही दो जिन्दगियों के विषय में कुछ फैसला करने वाले हैं ।

वह परेशान है। औपचारिकता से परिपूर्ण एक अन्तराल गुजर गया है और फूफा जी और भैरवप्रसाद जी मूल बात पर नहीं आ रहे है। उसे लगता है मैं ही शुरू कर दूं क्या ? पर कुछ सोच कर चुप रहता हूँ। उसे डर है कहीं फूफा जी नाराज न हो जाएँ और खुद को अपमानित महसूस न करें।

थोड़ी देर बाद उसे राहत मिलती है जब भैरवप्रसाद जी मूल बात पर आ जाते है। वे फूफा जी से पूछते हैं—आप लड़की की फोटो वगैरह लाये हैं क्या ?

"फोटो तो मैं नहीं लाया पर घर पहुँचते ही भेज दूँगा"। फूफाजी जवाब देते है और आगे कहते जाते हैं—"वैसे बच्ची गोरवर्ण है और घर का सब काम कर लेती है। पढ़ी लिखी है। मैं अपनी तरफ से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप निराश नहीं होंगे।"

फूफाजी का यह वाक्य सुनकर उसे हंसी आ गई है। वह सोचता है क्या फूफाजी खुद की शादी करने आए है। वह जानता है कि फूफाजी लड़की के विषय में पहला वाक्य झूठ बोल गये हैं। दरवाजे का पर्दा हिलता दिख रहा है। वह जानता है माँ इस झूठ को सुनकर तिलमिलाई है। उसे खुशी होती है। सोचता है यदि माँ फूफाजी से नाराज हो जाएँ तो अच्छा हो। तभी अचानक माँ अन्दर से उसे पुकारती है। वह अन्दर पहुँचता है। माँ उसे पड़ोसी के घर से मंगाई हुई ट्रे पर कलाकंद और आलू-पोहा की प्लेट सजाकर देती है। माँ के चेहरे पर गुस्सा और कुछ न कर पाने की विवशता वह देखता है और ट्रे लेकर बाहर आ जाता है।

फूफाजी और भैरव प्रसाद जी किसी बात पर ठहाके लगा रहे हैं। शायद मुख्य बात को भूल गये हैं। थोड़ी देर और भुलाने के लिए वह उन लोगों को प्लेटें थमा देता है। भैरव प्रसाद जी ने अपने प्लेट को टेबिल पर रख दिया है। वे पानी की माँग करते हैं। वह उन्हें पानी लाकर दे देता है। उनके मुँह में पान रखा हुआ है। वे कुल्ला करके पानी प्लेटफार्म पर उगल रहे है। कमरे का वातावरण बेहूदगी से भर गया है। कुल्ले से निपटकर वे सोफे पर दोनों पाँव ऊपर रखकर बैठ ग ये हैं।

उत्त
प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

थोड़ी देर बाद चाय की चुस्कियाँ लेते हुए भैरव प्रसाद जी अपने लड़के के गुणगान में लगे हुए हैं—"देखिए मैं अपने बच्चो को पूरी तरह अनुशासित देखना पसन्द करता हूँ इसलिए मेरे लडके में बुरी आदतें नही हैं। चाय तक तो वह छूता नही।"

वह चौंक जाता है। उसे याद आता है परसों ही भैरव प्रसाद जी के लडके ने उससे आधी सिगरेट माँग कर पी थी।

भैरवप्रसाद जी कहे जा रहे है—"उसकी दोस्ती किसी भी गलत आदमी से नही है। और मैं तो हूँ ही जैसे बच्ची आपके घर वैसे ही हमारे घर।" वह महसूस कर रहा है लड़की के लिए भैरव प्रसाद जी का सम्बोधन बदल गया है।

भैरव प्रसाद जी आगे कह रहे हैं—"मैं रीति-रिवाज से ही सब कार्यक्रम करना चाहूँगा क्योंकि बुजुर्गों ने जो चला दिया है उसे तो निभाना ही चाहिए। उनका अनुसरण करना ही हमारा पहला कर्तव्य है।"

वह सोचने लगता है उसके दादा ने कुएं में कूद कर आत्म-हत्या कर ली थी। क्या वह भी छलाग लगा पायेगा।

वह हर बात दोनों पक्षों की ध्यान से सुन रहा है। दोनों ही पचास प्रतिशत झूठ बोल रहे है। अच्छाइयों को ही बता रहे है। बुराइयों को पचाने के प्रयास में हैं। पर उसे विश्वास है कभी-न-कभी पेट खराब होगा तो ये लोग कान में जनेऊ फँसा कर दौड़ेंगे और किसी तरह निवृत होकर सुकून पा जायेंगे। इन्होंने जो कुछ किया-धरा होगा उसको उठायेंगे लड़का-लड़की। इनका कुछ नही बिगड़ेगा।

भैरव प्रसाद जी फूफा जी को सम्बोधित कर रहे हैं—आप बच्ची की कुंडली लाए हैं न?

प्रत्युत्तर में फूफाजी कुर्ते की जेब से तुरन्त कुंडली निकालते हैं।

भैरव प्रसाद जी कुंडली लेते हुए कहते हैं—"मैं लड़के की कुंडली से मिलवा लूँगा।" वे कुंडली को चश्मा लगा कर देख रहे हैं। एक क्षण को

उसने अन्दर-ही-अन्दर भैरव प्रसाद जी को दाद दी। कितनी चतुराई से उन्होंने अपनी बात फूफाजी से कह दी और अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया।

वह देख रहा है फूफाजी की समझदारी भैरव प्रसाद जी के समक्ष नही के बराबर है। हजारों के उल्लेख से फूफाजी निराश दिखाई पड़ने लगे हैं। उसकी इच्छा हुई वह उनसे कहे भैरव प्रसाद जी फेंक रहे है। पाण्डे जी ने इन्हे कुछ नही दिया। पर कैसे कह दे। उसकी आंखो देखी बातें ही तो भैरव प्रसाद जी ने कही हैं। वह भी शादी मे था। इस समय वह चिढ़ने के अतिरिक्त क्या कर सकता है। अगर करे भी तो फूफाजी जैसे वयोवृद्ध क्या उसे समझदारी मानेंगे। इन लोगो की समझ हमारे कन्धों को मजबूत नही समझती।

फूफाजी और भैरव प्रसाद जी किसी निर्णय पर नही पहुँच पा रहे है। फूफाजी तो हजारो की बात के कारण शंकित और निराश दिख रहे है। एक आशा से फिर वे कहते हैं—यदि आप चाहे तो लड़का बच्ची को देख सकता है। कोई समय निश्चित कर लीजिए।

भैरव प्रसाद जी कहते है—हां आजकल नये चलन के मुताबिक ऐसा हो सकता है। पर जहां तक मैं सोचता हूँ मेरा लड़का इतना आज्ञाकारी है कि मेरी बात टाल नही सकता। उसकी सारी इच्छाएँ आप मुझ पर छोड़ दीजिए। मैं जैसा चाहूँगा वैसा ही होगा। पहले प्रारम्भिक बातें हो लें। वे भी तब ही हो सकेंगी जब कुंडली का मिलान सही ढंग से हो जाएगा। फिर समय मिलेगा तो बच्ची भी देख आयेंगे।

थोड़ी देर भैरव प्रसाद जी रुकते है। शायद उन्हे फूफा जी की बात का इन्तजार है। फूफाजी फिर उद्विग्न दिखाई पड़ने लगे है। भैरव प्रसाद जी का धीरज खत्म हो गया है। वे फूफाजी से कहते हैं—आप क्या निर्णय कर रहे हैं और आपके दूसरे कार्यक्रम किस प्रकार होंगे, आप पत्रों के माध्यम से अवगत कराइये। और अगले माह एक बार और आ जाइये।

वह सोचता है फूफाजी इस बार क्यों आये हैं। उसे आश्चर्य हो रहा है कि वे भैरव प्रसाद जी से क्यो नहीं कह रहे हैं कि यह शादी नहीं हो

सकेगी। तभी भैरव प्रसाद जी उठते हैं—"अच्छा नमस्कार। अच्छी मुलाकात रही आपसे। चलता हूँ।" वे फूफाजी से कहते हैं। फूफाजी हड़बड़ाहट में उठते है उनके हाथ जुड़ जाते हैं। भैरव प्रसाद जी मरघट मैदान की ओर पैदल निकल जाते हैं। फूफाजी उन्हें हसरत भरी निगाहों से जाते देख रहे हैं।

तभी माँ जो अन्दर से सभी बातें सुन रही थी फूफाजी से आकर कहती है—"क्या सोचा आपने ? आयेंगे अगले माह ?" फूफाजी हामी भरते हैं।

उनके सब्र को देखकर आश्चर्य होता है उसे। वह खीज जाता है। इच्छा होती है कह दे कोई जरूरत नहीं है आने की। आपको पता है आपके आने के बाद माँ कितने पैसे खर्च कर चुकी है। और अगले माह आप आयेंगे तो भी खर्च हमी को करना पड़ेगा। इन समझौतों को कब तक ढोयेंगे हम लोग।

वह इन बातों को अन्दर-ही-अन्दर बड़बड़ाता है और अकस्मात् फूफाजी से कहता है—"अब कोई फायदा नहीं है उनसे बात करने का। आपके पास उतने पैसे नहीं...... ।"

तभी माँ उसे घूरती है और वह सकपका जाता है और पैर पटकते हुए बाहर आ जाता है। वह सोचता है फूफाजी के चले जाने के बाद वह जरूर माँ से झगड़ेगा। पंक्चर पड़ी साइकिल उसे दिखती है। इच्छा होती है घूमने की। पंक्चर बनवाने के लिए वह पैसे टटोल रहा है।

□□

परजीवी

रिहर्सल रूम से बाहर निकले तो सर काफी बोझिल था। रात का वक्त था और नौ बज रहे थे। नाटक और उसके "कन्टेन्ट" को लेकर उग्र बहसें हुई थीं। रिहर्सल आरम्भ हुए एक महीने से ज्यादा समय बीत गया था। फिर भी बहसें जारी थीं। अनुशासनहीनता चरम सीमा पर थी। बहस के दौरान चूंकि वह एक मौन आदमी था, इसलिए खीझा हुआ था। इतने दिन रिहर्सल करते हो गये थे फिर भी नाटक में बलात् प्रगतिवादी "आस्पेक्ट्स" खोजे जा रहे थे तो बहसें काबिले-बरदास्त नहीं रह गई थीं। सम्भव है, उस जैसा एहसास सभी को हुआ हो, पर मर्यादाजनित संकोच की वजह से उसकी उम्र के लड़के शांत रहे थे। इन कारणों से समय के एक विशाल पहाड़ को उन लोगों ने पार कर लिया था और निर्णय के अभाव सहित बाहर निकल आये थे।

वे (वह और सुराज) बुलन्द चौराहे पर आ गए थे, जिसे निस्संकोच वे अपना मानते थे, क्योंकि वहाँ उन्हें गाली देने से कोई रोकता नहीं था। अकसर वे वहाँ निन्दा या मतभेदों की बहसों में उलझे रहते और उन्हें अपूर्व आनन्द मिलता रहता। बहस के पीछे कोई अर्थ होता है, इस बात का सरोकार उनसे सम्बन्धित नहीं रहता। इर्द-गिर्द सुन्दरता की मौजूदगी लगातार बनी रहती।

कभी-कभी वे उसे इसलिए भी नकार देते कि वह उनकी पहुँच के बाहर की वस्तु होती थी। अन्दर से उन्हें स्वीकारते हुए ऊपर से नकार देना उनकी आदत बन चुकी थी और इसलिए कुछ भद्र लोगों के बीच वे शरीफ समझे जाते थे और नमस्कारों को प्रसन्नता पूर्वक झेलते रहते थे। फिर उन्हें चौराहे को छोड़ कर शेष दुनियाँ से कुछ मतलब नहीं रहता था। चौराहे पर खड़े रहते हुए उनकी मानसिकता जड़ हो गई थी और उन लोगों ने एक बात निश्चित रूप से तय जान ली थी कि शहर भी जड़ है और इसकी सारी सम्भावनाएँ मर चुकी हैं। बस, कभी-कभी कोई बाहरी व्यक्ति शहर की आलोचना करता तो वे उसे लपेट देते और वह मिमियाने लगता। जिन्दगी में सुर्खाब लगने की इन्तजारी लगभग खत्म थी। यह वे अच्छी तरह समझ गए थे, कि उनकी जिन्दगियों को एक ठहराव ने जकड़ रखा है और उससे छुटकारा संदेहास्पद है। इसलिए जब कोई शिष्टाचार से वशीभूत हो उनसे पूछता—"हाउ इज लाइफ ?" तो उसे "जस्ट पुल्लिंग आन" का जवाब देते और शब्दों की गम्भीरता को हास्यास्पद बनाते हुए जानबूझकर टाल दिया जाता। वहीं खड़े-खड़े बारह-एक बज जाते तब उन्हें लगता कि अनियन्त्रण पल रहा है। कुत्तों की भौंकने की आवाजों से वे चौंकते। उन्हें घर की याद आती और महसूस होता कि अभी भी वे पालतू हैं। फिर कुछ मिनटों बाद वे घर में होते। यही क्रम रोज चलता।

सुराज काफी समझदार और कला-धर्मी आदमी है। उसे कला और साहित्य की गहरी समझ है। उधर उसने भी साहित्य का भुगतान शुरू कर दिया था, पर सुराज को प्रेरणा कतई नहीं मानता था। सुराज के संसर्ग ने उसे बस इतना सिखाया था कि पढ़ना और बहस में शामिल होना अनिवार्य है। इस अनिवार्यता के बोझ तले वह पढ़ता रहता। सुराज के साथ उसका आचरण प्रत्यक्षत: काफी खुला हुआ था। देखने वालों को उन दोनों के बीच अभिन्नता नजर आती होगी। पर वास्तविकता उससे परे थी। वह हरदम एक संकोच अपने अन्दर पाले रहता। यह बौद्धिक संकोच किस्म की चीज होती। इसके पोषण के पीछे उसकी अज्ञानता सशक्त थी। सुराज के सामने उसका आचरण

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
अरघान (कविता संग्रह : 1984)
), गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लगभग मूक शैली का रहता। मूकता यंत्रणा भी देती थी और वह उबरना चाहते हुए भी उसे बरदाश्त करता रहता।

उस दिन वह शीघ्र घर पहुँचना चाहता था। पिछले दिनों से उसकी माँ बीमार चल रही थी। उनका खासा इलाज हुआ था। डाक्टरों को रोग समझ में नहीं आता था। वे उन्हें यह कहकर टाल देते कि कुछ नहीं है जरा खून की कमी है। मेडीसिन ले लीजिए, सब ठीक हो जाएगा। मनोवैज्ञानिक रूप से कुछ दिन तबियत ठीक रहती फिर बाद में वही तकलीफें उन्हें दबोच लेती। ऐसा दो-तीन वर्षों से चल रहा था। उसे यह मालूम था कि ऐसा कब तक चल सकता है। पर वह निकम्मा साबित हो रहा था। निकम्मेपन से उबरने की खातिर सतही स्तर पर कुछ दिन के लिए वह एकदम वैयक्तिक हो जाना चाहता था और खुद को दोगला कहलाने की अन्दरूनी हिम्मत रखता था पर उसे उजागर नहीं होने देना चाहता था। उन दिनों उसकी माँ पर चिकित्सीय मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव समाप्त हो चुका था। उसका प्रयत्न सिर्फ इतना था कि वह अपना व्यवहार घर के प्रति तात्कालिक रूप से ऐसा रखे कि माँ के दिमाग में दूसरी तरह की मनोवैज्ञानिकता समा जाए और वे चलती-फिरती रहें। भले ही उसे अपने सारे मोर्चों को त्यागना पड़े। इन सारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वह घर जल्दी पहुँच जाना चाहता था, पर वैसे आसार उसे नजर नहीं आ रहे थे।

सुराज से उसने कहा—"यार चलते हैं घर।"—सुराज को यह सुनकर कुछ अजीब सा लगा। उसे आश्चर्य मिश्रित भाव से देखने लगा। फिर उसने घड़ी पर नजर दौड़ाई और उसकी ओर देखा। वह उसका आशय समझ गया कि सुराज कहना चहता है—"कैसे चूतिया हो, दस बजे ही घर जाना चाहते हो।" इतना समझते ही वह चुप खड़ा रह गया। सुराज कुछ आभिजात्य किस्म के लोगों के बीच हो लिया। वह उसे दूर खड़ा देखता रहा। उसी दौरान उसके कुछ पुराने दोस्त (जिन्हें तात्कालिक रूप से वह अपने से घटिया समझता था) आ गए थे। उसे उनका विशेष आदर करना पड़ गया था। ये कार्यवाही सिर्फ इसलिए थी कि इसके द्वारा उस विवशता को नकारा जा सकता था, जिसकी

वजह से वह घर जाने में लेट हो रहा था। उसके आस-पास काफी भीड़ जमा हो गई थी। औपचारिक बातें हो रही थीं। जैसे—"कहो यार, क्या हाल-चाल हैं?" सब ठीक तो है? इत्यादि। और वह सोच रहा था ये सब पूछने की जरूरत ही कहाँ रह गई है जबकि हिन्दुस्तान में सब कुछ ठीक हो ही नहीं सकता। लोग तो कुछ ठीक होने की आशाएँ लगाए हैं। पर उस समय यह सब बरदाश्त करना अच्छा लग रहा था। इस तरह वोरियत और उद्विग्नता के क्षणों से दस-पन्द्रह मिनट घटाने में वह कामयाब हो रहा था। ये स्थिति भी स्थायित्व को नहीं छू पाई और उसके सारे दोस्त चलते बने।

अब वह फिर उसी ऊहा-पोह में लौट आया था। उस समय उसे लग रहा था, चौराहे की जीवन्तता का अन्त निकट है और उसे सहन करना मुश्किल है। इसलिए वह पान के ठेले पर पहुँच गया और पान वाले से बहुत अश्लील बातें करने लगा। पान वाला बहुत गम्भीरतापूर्वक बातों पर अपने बयान देने लगा। वह भी तूल देता रहा। एक अन्तराल के बाद लगा बातें पूरी खर्च हो गई हैं। उसने घड़ी पर नजर डाली। ग्यारह बजने को थे। सुराज को तलाशने की गरज से चारों तरफ नजर घुमाई। वह लोगों से मुक्त एक कोने में खड़ा था। रास्ते की हलचल दम तोड़ रही थी। वह उसके करीब पहुँच गया। चारों तरफ उन जैसे ही दूसरे लोग दो-दो चार-चार के समूहों में बिखरे थे। सुराज का मूड बिगड़ा हुआ लग रहा था। वह उसके समक्ष उसे बहलाने लायक बातें करने लगा जो चापलूसी का अन्दाज भर थी। शायद कुछ वाक्यों के बाद, सुराज बोर होने लगा था क्योंकि दूसरे ही पल उसने जेब से बीड़ी निकाली और जलाकर पीने लगा। उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि वह सुराज को चलने को कहे। कुछ देर बाद सुराज के चेहरे पर प्रफुल्लता के भाव आने लगे और उसने कहा—"यार रवि, आज कुछ ठण्ड ज्यादा है। थोड़ी सी दारू पीने की सोच रहा हूँ।" वह अन्दर से उबल पड़ा—"आपके पास पीने के लिए पैसा है तो सोचने को जरूरत क्या है। सामने होटल है जाओ और पी आओ, मुझे क्यों बोर कर रहे हो।"—ऊपरी तौर पर उसने कहा—"हाँ! हाँ!

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
प्रधान (कविता संग्रह : 1984)
), गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ठण्ड बहुत है, तुम जरूर ले लो।" इसके बदले में सुराज के चेहरे पर एक लज्जाजनक मुस्कान उभरी फिर उसने कहा—"पर कैसे यार? सामने को किशोर खड़ा है और उसके दोस्त हैं। किशोर कहेगा अकेले-अकेले पी आया साला। मुझे ऐसा अच्छा नही लगता।" वह प्रत्यक्ष मे चुप रहा पर उसके अन्दर के आदमी ने चिढ़ और व्यंग्य से कहा—"अच्छा नही लगता तो ऐसी-तैसी कराओ। बगल के व्यक्ति की तुझे फिक्र नही, दूर के व्यक्ति से संकोच है। शर्म कर बे।"

उसकी चुप्पी देखकर सुराज ने प्रार्थना के स्वर में कहा—"जरा देर रुकते हैं। इन लोगो के चले जाने के बाद पीकर चलेंगे।" एक बार फिर उसने बीडी निकाली अबकी बार उसकी संख्या दो थी। जलाकर एक उसे दी। वह कश लेने लगा।

ठण्ड बढ़ती जा रही थी। चौराहे की सभी दुकानें बंद हो चुकी थीं। दूर-दूर तक शान्ति थी। कभी पान के ठेले से अट्टहास उठता और उन तक पहुँचते-पहुँचते हवा मे विलीन हो जाता। उसके अन्दर का आदमी उसके प्रति दयावान हो रहा था और कह रहा था—चूतिए खड़ा क्यो है बे? घर क्यो नही जाता। तुझे अपनी माँ का जरा भी ख्याल नही। उसके लिए अपनी जागर क्यों नही चलाता? बड़ी रचनात्मकता बघारता फिरता है। उसने प्रत्युत्तर मे डपट दिया। कहा—"साले, मोहभंग जरूरी है, और तू क्या समझे रचनात्मकता। ऐसी फक्कड़हाई से सृजन की प्रेरणा मिलती है। ये परिस्थितियाँ हमे जूझने को मजबूर करती है। चुप रह।" और उसके अन्दर के आदमी ने चीख कर दम तोड़ दिया। वह अपनी विजय पर मुस्कराया। उसके बाद थोड़ी देर के लिए वह सब कुछ भूल गया। ज्यादा समय गुजरने नही पाया और उसके अन्दर का आदमी फिर जी उठा और उसे कुरेदना शुरू कर दिया। उसे लगा अब इसकी गिरफ्त से बचना मुश्किल है।

उसने मन ही मन किशोर और उसके दोस्तों को गालियाँ देनी शुरू कीं। एकाध गाली बड़बड़ाहट के अन्दाज में बाहर निकल आई और सुराज समझे

मशीनी दुनिया के विकास के उस चरण में नहीं है जहाँ पहुँचकर उस समझौते के लिए बाध्य नहीं होना पड़ेगा और उससे वे मुक्त हो सकेंगे। फिर रास्ता खुद को तय कर लेने के लिए उनका वक्त नहीं लेगा। वे चलते रहे। देखने से लगता था वे दोनों बहुत करीब हैं, पर वैसा नहीं था। उनके बीच एक लम्बा जंगल उनके अदृश्य मतभेदों का प्रतिफल था जो निरन्तर बढ़ता जा रहा था और एक विवशता थी, जिसकी वजह से वे उसकी आक्रामक प्रगति को रोकने में विफल थे।

ईस्टर्न क्रासिंग तक वे मौन चलते रहे। जहाँ ईस्टर्न क्रासिंग की तख्ती लगी थी वहाँ पहुँचकर सुराज अपने गले को साफ करने के उद्देश्य से एक बार खाँसा, जो उसे इस तरह लगा कि सुराज उसे अनुभव कराना चाह रहा है कि वह साथ है और बात-चीत करना निषेध नहीं है। खाँसी की आवाज ने उसे सचेत किया और वह बोलने लगा—"आज कुछ ज्यादा ही ठण्ड है यार। कोट पहनने के दिन आ गये।" यह वाक्य उसके अंदर चल रहे द्वन्द्व के खिलाफ बहुत टुच्ची सी दलील थी। प्रत्युत्तर में सुराज ने हुँकार भरी, जिसने उसके लिए भ्रम पैदा किया और वह समझने की फिराक में लग गया कि आखिर सुराज चाहता क्या है। कुछ देर के लिए वह कुछ और ही सोचने लगा। दूर किसी पुल से ट्रेन निकल गई और उसकी साइकिल से आती चूँ-चर्र की आवाजें उसमें विलीन हो गईं। सेंट्रल जेल के घंटे ने बारह बजाए और वह सहज होने के उद्देश्य से सोचने लगा कि जरूर काशी एक्सप्रेस गुजरी है। फिर सुराज ने उससे पूछा—"क्या टाइम हो गया ?"

"बारह"—उसने संक्षिप्त सा उत्तर दिया पर उसके मुँह से निकला यह शब्द उसे लगा कि हाईकोर्ट की दीवारों से टकराकर बार-बार प्रतिध्वनित हो रहा है और उसके मस्तिष्क की नसें फट जायेंगी।

सड़क सुनसान थी। हर फर्लांग के बाद एकाध साइकिल या कार गुजर जाती और फिर सूनसान पसरने लगता। यही क्रम चलता रहा और वे चलते रहे। मार्डन-मार्केट की बिल्डिंग के सामने सुराज ने साइकिल रोक दी। वहाँ

कुछ चहल-पहल थी। फुटपाथ पर पन्द्रह-बीस पुलिस वाले खड़े थे। पुलिस की उपस्थिति किसी गड़बड़ी की परिचायक थी। सुराज उन्हें देखता रहा। उसके पीछे "एडीना रेस्टारेंट" का बोर्ड चमक रहा था। वहाँ अवैध रूप से दारू बेची जाती है। वे यह जानते थे कि पुलिस का वहाँ पाया जाना एडीना से सम्बन्धित नहीं है। पुलिस की ओर से "एडीना" में दारू का विक्रय वैध है। वह बोर्ड की ओर देख ही रहा था जब सुराज ने किसी से पूछा—क्यों क्या आई ?

"छक्का"।—और कहने वाला तेजी से आगे सरक गया। दूसरे क्षण सुराज एडीना की ओर बढ़ने लगा। उसका घर उस मार्केट से एक फर्लांग दूर था इसलिए उसके अंदर हलचल तीव्र होती जा रही थी और वह खुद को [illegible] पर लटका महसूस कर रहा था।

रेस्टारेंट के बगल में एक पान का ठेला था। सुराज वहाँ जाकर खड़ा हो गया। उससे पूछा—"सिगरेट पियोगे ?" उसने स्वीकृति में सिर हिलाया। सुराज सिगरेट लेने को ही था कि कहीं से अविनाश खरे पहुँच गये। वे एक स्थानीय दैनिक अखबार में सिटी रिपोर्टर हैं। सुराज ने उन्हें नमस्कार किया। उनका परिचय काफी पुराना है। समय-समय पर वे उनका उपयोग अपनी गतिविधियों के समाचार छपवाने के लिए करते रहे हैं। सुराज अक्सर उसे बताता है कि वे एक अच्छे अखबार-नवीस हैं, पर समय ने उनका साथ नहीं दिया। वह जानता है समय किसी का साथ नहीं देता। यदि आपने उसका साथ नहीं दिया तो उसकी मनोवृत्ति आपको उखाड़ने के लिए हरदम तैयार रहती है। अगर आप उसका साथ दे पाये तो उपलब्धियाँ आपके कदम चूमती हैं। अभी भी ऐसे कई "बहादुर" दुनिया में पैदा होते रहते हैं जो समय को अपने ढंग से चलाना चाहते हैं और जूझते हुए शहीद हो जाते हैं। बाद में उनका नाम इतिहास में नहीं छपता। वह बहुत से लोगों को भी जानता है जो समय की नब्ज पकड़ने में विफल रहे हैं और समय बीमार पड़ता गया है और उनके करीब रहते हुए वे लोग "इनफेक्शन" के शिकार हो गये हैं। फिर हमेशा यह कहते पाये गये हैं कि समय बहुत खराब है। इस तरह की मानसिकता ईमानदारी के कारण पैदा होने वाली निराशा की ओर इशारा करती है।

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह : 1934)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

वे लोग खरे जी का सम्मान करते हैं बावजूद इसके कि वे उम्र में उनसे काफी बड़े नहीं हैं। न ही कभी एक अच्छे पत्रकार होने का रौब उन्होंने उन लोगों पर थोपने की कोशिश की। वह उन्हें सुराज के माध्यम से जानता है। वह सुराज की इज्जत करता है और चूँकि सुराज भी उनकी इज्जत करता है इसलिए वह उनकी इज्जत अपेक्षाकृत अधिक करता है। यानि सुराज के समक्ष जैसी अवस्था उसकी है, वैसी ही खरे जी के सामने सुराज की है। ये जैसी स्थितियाँ हैं, उनके प्रति बहुत आसानी से आलोचनात्मक दृष्टिकोण बनाया जा सकता है। कई बार वह सोचता है वह फिर भी खुद को सम्बन्धों के मामले में थोड़ा एडवांस महसूस करता है। इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि वह लोगों की इज्जत नहीं करता बल्कि होता यह है कि वह जितनी इज्जत लोगों को देता है वह उन्हें कम जान पड़ती है और ऐसी स्थिति में वह अक्सर हकाल दिया जाता है।

खरे जी के चेहरे पर स्वयं की स्थिति को लेकर निराशा दौड़ती नजर आती है। उनका परिवार संयुक्त है। कमाऊ वे अकेले हैं। इन्हीं वजहों से वे काम ज्यादा करते हैं। काम करने के दौरान खर्च होने वाली ऊर्जा उनके अन्दर की खीझ से पैदा होती है। इतनी रात में उनका चौराहे पर पाया जाना असंगत कभी नहीं हो सकता। वह यही सब सोच रहा था और वे सुराज से उसके घर के हाल-चाल का पता ले रहे थे। सुराज उन्हें संक्षिप्त उत्तर दे रहा था, इस सतर्कता के साथ कि उन्हें हरगिज यह आभास न हो कि उन्हें टाला जा रहा है। इस सत्य को सिर्फ वह महसूस कर रहा था।

अब खरे जी से मुलाकात के बाद दस मिनट गुजर चुके थे। सुराज और उनके बीच बातचीत शेष नहीं थी। वे दोनों अपने-अपने सीनों पर हाथ बाँधे यहाँ-वहाँ देख रहे थे। सुराज की निगाहों में ऊब दिखती थी जबकि खरे जी की नजरें सड़क पर कुछ खोज रही थीं।

कुछ ऐसी विडम्बना बन रही थी कि सुराज दारू का मोह त्यागने को तैयार नहीं था पर परिस्थितियाँ बाधक बनती जा रही थीं। उसे सुराज की ओर देखते हुए तरस आ रहा था इसलिए यह प्रक्रिया उस पर भी लागू हो रही थी। उस

समय तक वह अन्दर से बेतरह रोने लगा था। उसे लग रहा था वह कहीं भी जोर से लात मार देगा और उस समय कोई उससे बे करके बात करे तो उसे सड़क पर घसीट-घसीट कर मारेगा जबकि उसके स्वभाव के प्रतिकूल बैठती हैं ये बातें। उसे माँ का खौफ नहीं सता रहा था कि वह उसके घर पहुँचने पर उसे डाँटेगी या दुर्व्यवहार करेगी। अक्सर घर पहुँचने पर दरवाजा खुलते ही घूरती हुई माँ की शिकायती आँखें ऐसा कुछ कह देती हैं कि उसे शरीर के ऊपरी हिस्से में कुछ चक्कर खाता सा लगता है। बिस्तर पर पड़े-पड़े घन्टों गुजर जाते हैं पर नींद नहीं आती। उसे अपने जीवन पर संदेह होने लगता है। पिछले कुछ वर्षों से उसके घर में लोग ऐसी जिन्दगी जी रहे हैं, जिसमें लगता है सब कुछ अमानवीय है जबकि विवशताएँ ऐसी परिस्थितियाँ बनाती हैं। वे ऊपर से स्फूर्त दिखते हैं पर यह स्फूर्ति पूरी तरह मेके निकल होती है। माँ को देखते हुए हमेशा उसके दिमाग में यह प्रश्न उठता है कि माँ ने उसे किसलिए पैदा किया है। उसे कोसता भी है। वह अभी तक की जिन्दगी उसके लिए जी गई और वह उसके लिए एक पल भी नहीं जी पाता। यह सोचते हुए उसे ग्लानि घेर लेती है, जो पिछले वर्षों से उसके आत्मविश्वास को घुन लगा रही है और वह आशंकित है कि सम्भव है ऐसा ही चलता रहा तो वह आत्मविश्वास पूरी तरह खो बैठे और कुछ भी करने लायक न रहे। ये भय ही उसे घर से भाग जाने को तैयार करता है। वह भाग कर उस परिवेश में पहुँच जाता है जहाँ रोज नई बहसें शुरू होती हैं और बिना किसी निर्णय तक पहुँचे, उनका सिलसिला निरन्तर जारी रहता है।

अपने घर का विकास उसने बहुत सूक्ष्मता से देखा है। उसे याद है पिता की मृत्यु के बाद कुछ दिनों तक घर में मौन रहा। फिर एक नई तरह की जिंदगी जीने की तैयारियाँ शुरू हो गईं। उसके घर में सुव्यवस्था का निर्माण होने लगा। व्यवस्था के एक उच्च स्तर को स्पर्श कर पाने में वे कामयाब हुए। उस समय वह कालेज में पढ़ता था। बहनें भी पढ़ती थीं। उनकी माँ अपने स्वास्थ्य से बेखबर उन लोगों के लिए दौड़ती रही। कई वर्षों तक यही चला। माँ ने उन्हें सारी कठिनाइयों से अनभिज्ञ रखा। जिसकी वजह से शारीरिक और मान-

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सिक रूप से वे तन्दुरुस्त रहे। फिर उसने अपनी पढ़ाई पूरी की और बहनें घर को सूना करती गईं। माँ की हिम्मत चुकती गई। एक सूनेपन के बावजूद वह अपने लिए आर्थिक स्रोत ढूँढने मे व्यस्त हो गया और लगातार असफलताओं के थपेड़े लगते गये, जिन्होंने उसे घर से तोडना शुरू कर दिया।

घर से हटने के बाद भी वह कुछ अर्जित नही कर पा रहा है। न तो वह सामाजिक रह गया है न व्यावहारिक। इन कमियों ने उसे लोगो की निगाहों में नीचे गिराना शुरू कर दिया है। उसके सामने दो परिवेश है। वह दोनो की ओर लपकता है पर कही जगह नही मिलती। जीते रहने का अर्थ उसकी समझ से परे ही रहा है। अभाव, अज्ञानता और हीनता उसे हमेशा जकड़े रहती है। और वह हमेशा समृद्ध और विद्वान लोगो के सामने बौना साबित होता रहता है। उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही रह जाता और बहुत कुछ पाने की आशा की वजह से दूसरो के बताये रास्ते पर चल पड़ता है। इसका अवलोकन कभी नही करता कि रास्ता गलत है या सही। विशेषताएँ और कठिनाइयाँ उसे हमेशा दूसरों के अनुसार चलाती हैं और वह विरोध प्रकट नही कर पाता।

अब रात का एक बजा था। सड़क बिल्कुल सुनसान हो चुकी थी। सुराज चाहता था खरे जी टलें पर वे सड़क पर पाँच-दस मीटर की जगह मे कभी इस तरफ और कभी उस तरफ चक्कर लगा रहे थे। सुराज अब पीडित नजर आने लगा था। कुछ क्षणो बाद खरे जी ने शायद सुराज से कहा— घर जाइये। इसलिए सुराज उस तक आया और खरे जी को सुनाते हुए जोर से पूछा— क्यो रवि तुम चाय पियोगे न? वह समझ गया कि अब सुराज विद्रोह की स्थिति मे पहुँच गया है। उस पर बन्दूक रखकर गोली चलाना चाहता है। औपचारिकतावश उसने खरे जी से भी चाय के लिए पूछा। खरे जी ने अस्वीकृति से सिर हिलाया और वह बन्दूक का बोझ ढोते हुए सुराज के साथ रेस्टोरेन्ट के अन्दर चला गया। अन्दर घुसते ही सुराज का शरीर गतिमान हो गया। कुछ देर पूर्व की मायूसी खत्म हो गई। उसने जल्दी से दो पेग का आर्डर दिया साथ मे चार अन्डे लाने को भी कहा। वह दारू नही पीता इसलिए सुराज को आर्थिक सहूलियतें उससे हमेशा प्राप्त रहती है। बैरा आकर दारू का

गिलास और अन्डे उनके सामने रख गया। इस भय को अपने चेहरे से छिपाते हुए कि खरे जी अन्दर आ सकते हैं सुराज जल्दी-जल्दी घूंट भरने लगा। बाहर के सूनसान के विरुद्ध अन्दर आबादी नजर आ रही थी। लोगों की लड़खड़ाती आवाज़ों का स्वर और बीच-बीच में माँ-बहन की गालियाँ कानों से टकरा रही थी जिसकी वजह से उसका मन कुछ ही देर में कसैला हो गया। उसने इच्छा से अपने हिस्से के अन्डे गप्प कर लिये। इस वजह से सुराज ने समझा कि वह भी जल्दी में है। सुराज को लगा होगा कि वह उसका साथ दे रहा है जबकि वह उस वातावरण से बहुत जल्दी भाग जाना चाहता था।

सुराज ने गिलास खाली किया और वे पैसे देकर बाहर आ गये। पान की दुकान पर पहुँच कर पान लगवाया और खा गये। इस तरह बेहयाई पर एक चादर डाली। सुराज पान चबाते हुए खरे जी को सड़क पर तलाश रहा था। उनका दूर-दूर तक कहीं पता नहीं था। दारू पीने के बाद शायद सुराज उन्हें अपमानित करने की हद तक पहुँच चुका था क्योंकि उसके चेहरे की मसल्स खिंच गई थी और लाल हो रही थी।

उसे घर के लिए इतनी देर हो चुकी थी कि लग रहा था घर न भी जाएँ तो विशेष फर्क नहीं पड़ेगा। उन्हीं रोजमर्रा की स्थितियों से गुजरना ही पड़ेगा। पहुँचकर उससे बचना नामुमकिन है। सुराज भी जल्दी नहीं कर रहा था। पर उसे लग रहा था वह खुद को उस स्थिति पर समर्पित कर देगा। उसके अन्दर की हलचल समाप्त हो गई थी। एक बेजान स्थिरता जन्म ले रही थी। इतनी रात गये कहीं जाना सम्भव नहीं समझकर उसने सुराज से कहा—"अब तो घर चलें या।" सुराज ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

वे फिर सड़क पर साइकिलें चला रहे थे। चारों ओर कड़ी ठण्ड की वजह से कुहरा फैला हुआ था जिसकी वजह से कुत्ते सड़क के किनारों पर दुम दबाये सो रहे थे। निस्तब्धता को ट्यूब लाइटों से उठती आवाजें तोड़ रही थी। वे लोग फिर बहुत करीब चल रहे थे और वह निश्चित कर रहा था कि उनके बीच जो चीज है इसके आर-पार झाँकना सम्भव है, उसे तोड़ना नहीं।

उसके अन्दर कुछ देर के लिए सब शान्त था। वे वहाँ पहुँच गये थे; जहाँ से उसके घर के लिए गली मुडती है। उसने सुराज को विदा किया। सुराज बिना किसी आवाज के सड़क पर आगे बढ़ता चला गया। गली की शुरुआत के साथ उसके शरीर का ऊपरी हिस्सा चक्कर खाने लगा था। जब माँ ने दरवाजा खोला उसने उससे नजर नहीं मिलाई। कमरे की बत्ती बन्द कर दी और बिस्तर पर सोने के लिए लेट गया। अन्धकार राक्षसी अन्दाज में कमरे में फैल गया। बगल की पलंग पर लेटी हुई उसकी माँ ने आह भरी। उसे छटपटाहट होने लगी और लगातार बढ़ती गई। वह कड़ी ठण्ड के बावजूद पसीने में नहा गया। नींद नहीं आई। वह बिस्तर पर बार-बार उठता-बैठता रहा। अंधकार में उसे घुटन होने लगी। उसने बत्ती जला दी। माँ सो चुकी थी।

□□

जड़ें

अपने गाँव को भूले अर्सा हो गया था। मेरे परिवार ने मुझे मानसिक रूप
से इस तरह तोड दिया था कि मैं वहाँ और नही टिक सकता था। इसलि
चला आया इस शहर में। मेरे इस तरह पलायन के पीछे कारण था, मेरे परि
वार मे व्याप्त आपसी ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्यता और इनसे पैदा होने वाली झंझटें,
लड़ाई-झगड़े। जो लोग मेरी तरह निकल आये वे अच्छी जगहो पर हैं, अच्छे
ओहदो पर हैं। मैं यदि वहाँ रुक जाता तो शायद वह जगह मुझे निगल जाती।
वहाँ से आ जाने के बाद मेरे अन्दर, कभी भी वापस लौट जाने का विचार
पैदा नही हुआ······पर आज जो कुछ मेरे साथ घटित हुआ, उसने मुझे फिर
कुछ देर के लिए उस वातावरण मे धकेल दिया था।

उनके घर जाकर एक बात समझ मे आ गई थी कि किसी के परिवार की
आन्तरिक कमजोरियों को कुछ लोग किस तरह अपने मनोरजन के लिए
उछालते हैं। वे सामने बैठे हुए का ख्याल नही रखते। उसे दुख हो, खुशी हो,
उन्हे इन बातो से कुछ लेना-देना नही होता।

संघी के काम से मुझे वहाँ जाना पडा। नही तो मैं वहाँ जाना ठीक नही
समझता। मैं कई बार उसे कह चुका था कि मैं वहाँ नही जाऊँगा। पर चूंकि
संघी मेरा अंतरंग मित्र है, अतः उसके आग्रह को मैं टाल नही सका। उसके

50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

-साथ लगभग घिसटता-सा चल दिया। पर वहाँ पहुँच कर एक अजीब-सी घुटन लगातार महसूस करता रहा। उसका कारण मैं सघी को नही मानता। सघी तो बस बहाना मात्र था। जो कुछ होना था वह सब कुछ तो उनके कारण हुआ, जिनके घर मैं गया था। उसके पूर्व कभी सोचा भी नही था कि मैं उनके घर जाऊँगा। हर पल वहाँ बैठे हुए सघी के ऊपर खीझता रहा पर प्रत्यक्ष में उनके सामने मुस्कुराहट का मुखौटा लगाये रहा। मुझे पूरा विश्वास है कि उन्हें मेरा मुखौटा बहुत पसन्द आया होगा, तभी तो वे इतनी आत्मीयता से पेश आये थे। पर आत्मीयता का मुखौटा उनका भी काबिले तारीफ था।

पता नही क्यो, आदमी अभी तक "नेगेटिव" डाल के "पाजिटिव" निकालने की पद्धति को अपनाये हुए है? मैं वहाँ से लौटने के बाद अब तक यही सोचता रहा हूँ।

पहले तो मैं और संघी उनके लडके के पास पहुँचे। वह यूनिवर्सिटी के टीचिंग डिपार्टमेंट से सम्बद्ध रिसर्च स्टडीज़ में शोध-कार्य मे लगा हुआ है। गाँव मे मेरे साथ गिल्ली-डंडा भी खेलता था। शहर मे आकर उसने अपने-आपको बड़ी अद्भुदता से परिवर्तित किया है। निःसंदेह वह आला दर्जे का "परिवर्तन-शील" व्यक्ति बन चुका है। गाहे-बगाहे उससे मेरी मुलाकात होती रहती थी। उसके बाप की अपेक्षा मैं उसे ज्यादा पसन्द करता हूँ। इस महानगर में आके, चूँकि लोग अपना एक अलग और संकुचित दायरे का निर्माण कर लेते है इस-लिए वह भी मुझसे इतनी घनिष्ठता बनाये नही रख सका। मैं सोचता हूँ, वह जितना शालीन है नही, उतना अपने-आपको दर्शाने के प्रयास मे रहता है। यह क्षमता सभी में नही होती पर चूँकि उसमें है इसलिए वह अपना काम अपने ढंग से निकाल ही लेता है। शायद यही कारण है कि वह योग्य न होते हुए भी 'योग्यता का प्रमाण-पत्र' हासिल कर लेता है। मेरी अपनी स्वतः के प्रति इसके विपरीत धारणा है। मैं सोचता हूँ मैं योग्य होते हुए भी कही-कही चूक जाता हूँ, उस प्रमाण-पत्र को हासिल करने मे। पर वह कभी नहीं चूकता। कभी-कभी ईर्ष्या के भाव भी मुझमें उसके प्रति आते हैं। पर मैं अभिनय प्रवण हूँ। उसे आभास भी नही होता। मेरा भाग्य मुझे कहाँ ले जायेगा ये तो अनिश्चित

है पर उसका भाग्य उसे कहाँ ले जायेगा यह पूर्व-नियोजित है। अक्सर, उसकी कठिनाइयों के संदर्भ में मैं इसी ईर्ष्यावश उसे गलत सलाह दे देता हूँ। परन्तु मेरे परामर्श पर वह कभी नहीं चला ऐसा मुझे महसूस होता है। नहीं तो वह कब का भटक चुका होता।

वह मालगुजार के घर पैदा हुआ था। मैं भी मध्यम वर्गीय "समृद्धिशाली" परिवार का लड़का हूँ। गाँव में वे मालगुजार थे। हालांकि मालगुजारी वगैरह अब खत्म हो चुकी है। पर प्राचीन "माल" तो अभी शेष है। उसका उचित-अनुचित फायदा वे उठा ही लेते हैं। मेरी सिर्फ "पूछ" है। उनके लड़के को बहुत कम लोग पूछते है। मेरे पास "माल" नहीं है। वह माल के जरिये अपनी "पूछ" के वातावरण का निर्माण कर लेता है। इस "पूछ" पर आज-कल लोग "माल" को हावी करने पर उतारू हैं। उस समय भी जब मैं छोटा था, मेरे पिता जी और उसके पिता जी इसी "पूछ" पर चर्चा करते रहते थे। उन दिनों मैं कुछ नहीं समझता था। पर बात अब कुछ-कुछ समझ में आने लगी है। कभी-कभी उन्हे बातचीत करते हुए लगता था कि ये बात कर रहे हैं या झगड़ रहे हैं। फिर एक भयानक आतंक मुझमें समा जाता था और मैं भाग जाता था।

जब हम लोग (मैं और संघी) उनके बेटे के साथ, उनके घर पहुँचे तो उन्हें आलीशान सोफे पर बैठे बीड़ी पीते हुए पाया। बड़ी मुश्किल से अभिवादन के लिए मैं हाथ उठा पाया था। अभी वहाँ से वापिस हुए काफी देर हो चुकी है, मैं हाथों में दर्द महसूस कर रहा हूँ।………थोड़ी देर वे मुझे देखते रहे थे; शायद मुझे पहचानने के प्रयत्न में। उस वक्त मैं अपने गाँव के विषय में, उनके विषय में, अपने परिवार के विषय में कितना कुछ सोच गया मुझे याद नहीं। चौंका तो तब, जब उन्होंने मुझे सम्बोधित किया। उनके लड़के ने शायद मैं कौन हूँ बता दिया था। पर उनके चेहरे का भाव अचानक परिवर्तित हो गया था। शायद मैं इतना बड़ा हो गया हूँ उन्हें देखकर दुःख हुआ था।

गाँव की "सामाजिक राजनीति" में रहकर हमेशा उन्होंने हमारे खानदान को नीचा दिखाने का प्रयत्न किया है। इस काम में अपनी आशा के विपरीत वे

0, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

हमेशा असफल रहे हैं। लेकिन आपस मे संजीदगी के वातावरण को कभी भी नष्ट नही किया उन्होने। वे प्रकाण्ड पण्डित है इस क्षेत्र में। उनमे अटूट साहस है इस वातावरण को चिरस्थायी बनाये रखने का।······शायद मुझमे नही है, क्योंकि मैं तो मात्र वानस्पनिक तेलो का ही उपयोग अपने जीवन मे कर पाया हूँ। उन्होने लगातार शुद्ध घी का सेवन किया है। शुद्ध घी आदमी के अन्दर धैर्य का निर्माण करती है। मैं ऐसा सोचता हूँ। धर्य हो, बुद्धि न भी हो, तो धैर्य बुद्धि का निर्माण कर देता है, क्योकि धैर्य का सीधा सम्बन्ध समय से है। जो तथ्य एक क्षण मे समझ मे नही आता तो उसके लिए एक घंटा ले लीजिये। वह समय आपका धैर्य कहलावेगा। आप एक क्षण में समझ आने वाली बात एक घटे मे समझ जायेंगे और "समझदार" तथा "धैर्य पुरुष" कहलायेंगे।······ उनके लिए तो कम-से-कम यह उचित लागू हो ही सकती है।

पूछने लगे—"क्या कर रहे हो ?"—अनमने ढंग से, प्रत्यक्ष ने मुस्कुराने के भाव से जवाब दिया, कि क्या कर रहा हूँ। एक बारगी इच्छा हुई कह दूँ आपके बारे मे सोच रहा हूँ। फिर शान्त ही रहा। थोडी देर तो पारस्परिक शिष्टाचार उन्होने अपनाया, पर जब काफी समय हो गया तो उन्होंने मेरे चाचा जी लोगो के सम्बन्ध में अपने विचार उगलने शुरू किये। कहने लगे—"गाँव में तुम्हारे चाचा जी वगैरह के घर तुम कभी नही जाते क्या ?" मैंने भर-सक उन्हें चिढ़ाने के लिए बुजुर्गियत दिखाते हुए कहा—मैं इसकी आवश्यकता महसूस नही करता। पर वे आश्चर्यचकित हुए मेरे जवाब से और शायद खुश भी। फिर पूछा—"क्या झगडा हो गया है ?"

इच्छा हुई कह दूँ हाँ। पर कह न सका, क्योंकि मैं धैर्य पुरुष के समक्ष बैठा था इसलिए कहा—नही ऐसी कोई बात नही। समय नही मिलता इसलिए। समय नही मिलता क्या मतलब ?—उन्होने ऐसे पूछा, जैसे मैंने कोई अविश्वस-नीय और चमत्कारिक बात कह दी हो। "बेटा यह तो बहुत बुरी बात है, तुम्हें तो कम-से-कम ऐसा नही करना चाहिए।" उनके चेहरे पर करुणा के भाव आने लगे।

मैं किसी भी हालत मे गुजरी बातो की, मेरे गाँव के लोगो की, रिश्तेदारो की चर्चा करके परेशानी मे नही पड़ना चाहता था। वे फिर भी मुझे परेशान किये हुए थे।

मैं सोच रहा था, इसके लडके से संघी किसी तरह अपना काम शीघ्र निपटाये और यहाँ से मुझे मुक्त कराये। पर लग रहा था संघी भी जल्दी टलने वाला नही था। भीतर कमरे मे मैंने उसे चलने के लिए आवाज भी लगाई। पर वे फिर बीच मे बोल पड़े—अरे इतनी जल्दी कैसे, बहुत दिनो बाद तो तुमसे मुलाकात हुई है। कुछ देर बैठो फिर चले जाना। हाँ तुम्हारे बहनोई कैसे हैं?और वह उनकी छोटी बहन के विवाह के सम्बन्ध मे एक लड़का देखा था और शायद विवाह निश्चित भी हो गया था। क्या हुआ उसका, अभी तक कोई समाचार प्राप्त नही हुआ?......कोई गडबड़ हो गई क्या?

मैं महसूस कर रहा था, कि मेरे मुँह से वनस्पतिक तेल का फुव्वारा छूट पड़ेगा, इसलिए मैंने अपना मुँह जोर से बन्द कर लिया। खिड़की के पास बैठे हुए मैंने निगाह बाहर डाली तो देखा घास पर कुछेक रोटी के टुकड़े पड़े थे। शायद किसी ने फेंक दिये थे। बगल मे नाली बह रही थी और एक सुअर उसमे मुँह डाले कुछ टटोल रहा था शायद......

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह रोटी क्यो नही खा रहा है। कुछ देर शान्ति के बाद वे फिर शुरू हो गये—"तुमने मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया। क्या शादी का रिश्ता टूट गया?......फिर अपने आप ही आश्वस्त होकर कहने लगे—मेरे ख्याल से उसके भाई वगैरह उस लड़की के प्रति अपने दायित्वो का निर्वाह नही कर रहे हैं। हाँ भाई आजकल फुरसत किसे है। आजकल तो लोग अपना आप देखते है। सगे को भी नही पूछते।......फिर मेरी ओर ऐसे देखने लगे जैसे मैं कुछ न कुछ प्रतिक्रिया तो अवश्य व्यक्त करूँगा।

, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मुझे अपनी स्थिति बडी अजीब सी लग रही थी। मैं समय-सापेक्ष चलने वाला प्राणी हूँ। वे मुझे दकियानूसी विचारो मे धकेलने पर उतारू थे। मेरा दम घुटने लगा था। खिडकी से अच्छी हवा आ रही थी, फिर भी मेरे फेफड़े उसे स्वीकारने में असमर्थ लग रहे थे। मुझे याद आ रहा था वह पागल जो एक जूता अपने हाथ मे लिए रहता था। अक्सर त्रिपुरी चौराहे पर खड़े होकर वह बार-बार न जाने किसको जूता दिखा देता। और लोग उस पर हँसते हुए निकल जाते थे। एक दिन मैं उसके पास पहुँचा तो उसने अपना जूता पैर मे डाल लिया, और मुझे गले लगा लिया। आस-पास भीड जमा हो गई। भीड मे कई लोग चिल्लाये—"एक से दो भले। मैं वहाँ से सरपट भागा, फिर कभी भी उस तरफ जाने की हिम्मत नही की।"

संघी को मैंने फिर आवाज लगाई—तुम्हारी बातें हो गई हो तो वापिस चलें। वे लोग भीतर के कमरे मे बैठकर बातें कर रहे थे। "बस एक मिनट और''''''कमरे से आवाज आई। मैं घडी की सुईयाँ देखने लगा एक-एक सेकेंड गिनने लगा।"

उन्होने एक बीड़ी जलाई और मेरे मुँह को खुलवाने के लिए अन्तिम प्रयास किया। उन्होने मेरे छोटे चाचाजी के विषय मे पूछा—"कहाँ है आजकल विश्वनाथ। गाँव तो कभी नही आता। इतना पहुँच वाला हो गया है वह। बड़ा आदमी बन गया है। पर अपने भाई के पास तो कभी-कभी आना चाहिए उसे। एक तो पहले ही जायजाद मे हिस्सा बाँट लिया, ऊपर से उस गरीब बड़े भाई के पास कभी कभार हाल-चाल पूछने भी नही जाते। कितना दुख होता होगा उसे। इस युग में यही सब हो रहा है। हमारा समय अच्छा था। उस समय तो लोग कम-से-कम सम्बन्ध विच्छेद नही करते थे।

मेरी बर्दाश्त की सीमा खत्म हो चुकी थी। मैंने कहा—"चाचाजी इन सब बातों में क्या रखा है। मैं तो कभी इन पर सोचता भी नही।"

वे दुबारा आश्चर्यचकित हुए, और कहा—"तुम मत सोचो पर हमें तो सोचना ही पड़ेगा।" मैं शान्त हो गया था। वे फिर भी बड़बड़ाते रहे। मैंने

ध्यान ही नही दिया। मैं खिड़की के बाहर देखने लगा। एक छोटा सा लड़का रोटी के उन टुकडो को उठाकर उस सुअर की ओर दिखा रहा था ताकि वह उसे खा ले। पर सुअर एक नजर उस ओर डाल के फिर नाली में मुँह डाल लेता था। लड़का बहुत देर तक कोशिश करता रहा। वह थक गया, पर सुअर ने रोटी नही खाई। वह रोटी के टुकडों को छोड़कर भाग गया।

मेरी नजरें खिडकी के बाहर से हटी तो मैंने पाया—संधी मुझसे कह रहा था—आओ चलें। मै लगभग भागता सा बाहर आ गया और सडक पर आकर मैंने जोर से अपने फेफडो मे हवा खीची।

□ □

दूसरा कदम

रोज क्लब जाने का आदी हो गया हूँ। मुझे लगता है मेरी नियति वहीं-कहीं छिपी बैठी है। बिना जाये काम नहीं चलता। महसूस होता है पेट भारी है। अन्दर कहीं अचकचा देने वाली उथल-पुथल है। और जब वहां से लौटकर आता हूँ तो लगता है पेट हल्का हो गया है। कभी-कभी मन में सोचता हूँ क्यों ये आदत बिला-वजह डाल ली है। संदेह भी होता है कि कहीं मेरा पेट फूलता तो नहीं जा रहा है। मुझे नुक्कड़ का धन्नालाल सेठ आ जाता है। मैं अपने प्रति चिन्ताग्रस्त हो जाता हूँ। मेरा पेट वैसा ही फूल गया तो क्या होगा ? अपने घर के वातावरण और अपनी छनती हुई शर्ट को देखकर लगता है मैं कितने बेहूदे प्रश्न का पोषण कर रहा हूँ। धन्नालाल की तरह का पेट मैं बना ही नहीं सकता ये निश्चित है। तो क्या मुझे क्लब जाने का पश्चाताप होता है ? नहीं। पश्चाताप और मेरा दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। तब मैं सोचने लगता हूँ क्लब जाने की आदत को समाप्त कर देने के संदर्भ में। सोचता हूँ और लगातार सोचता हूँ पर फिर वही उथल-पुथल, वही भारीपन का ध्यान आ जाता है और मैं इनके परे कुछ नहीं सोच पाता। फिर मेरे कदम अपने आप क्लब की ओर बढ़ जाते हैं। लेकिन एक बार मैं अपनी स्थिति से ऊब गया,

जिमनेजियम तो अब भी जाता है पर लगता है शारीरिक व्यायाम मे अब उसे आनन्द नही आता । आजकल "आदर्शवाद" उन पर हावी हो गया है । अभी कुछ दिनो पहले सुना था, देश में चुनाव हुआ था । शायद अखबारो में भी छपा था । पर मुझे याद नही रहता । मजबूरी यह है कि मुझे हर वक्त उसी की चिन्ता रहती है । मैं बदलते समय का प्रभाव उस पर देखता रहता हूँ । मैं लगभग उसका प्रहरी स्वयं को पाता हूँ । रात के गहन अंधकार मे, शाम के धुधलके मे, पुल पर बैठकर बीडी पीते हुए या लैट्रिन में बैठकर...... सिर्फ उसके विषय मे सोचता रहता हूँ । उसके लिए सोचना मेरी मजबूरी बन चुकी है । हर-पल उसका ही विचार मेरे अन्दर हिचकोले लेता रहता है । पर लगता है मेरी फिक्र उसे नही रहती । या हो सकता है रहती हो मुझे महसूस न होती है । वह खुद अन्दर से महसूस करके रह जाता हो । परिस्थितियाँ उसे मुझ तक पहुँचने ही न देती हो । कुछ भी हो मुझे अपना फर्ज निभाना ही पड़ेगा और मैं पूरी तरह उसके प्रति ईमानदार हूँ ।

वह पिछले दिनो चुनाव में व्यस्त रहा । मैंने सोचा था एक अच्छा समय करीब है । निश्चित ही कुछ अच्छा होने वाला है । चुनाव के बाद उसके जीवन मे परिवर्तन निश्चित है । मेरे ख्यालात, मेरी आशाएं सब निरर्थक रहे । चुनाव के बाद वह पूरी तरह आदर्शवादी हो गया है । उसके कमरे मे किसी महापुरुष का तैल-चित्र टंग गया है और मैं अपने घर में अपने पिता के चित्र के सामने खड़े होकर उन्हे कोसने लगा हूँ ।

कई बार मेरा स्वार्थ मुझे झकझोरता है । इर्द-गिर्द घेराव करता है । तब मैं मजबूर होता हूँ दूसरी तरह से सोचने के लिए । सोचता हूँ बसंत के और भी तो अन्तरंग हैं, पर वे उसका ख्याल क्यो नही रखते ?......और फिर सब कुछ सोचने का बोझ मैं अपने सिर क्यो लूं ? एक बार इन प्रश्नो ने मुझे उत्साहित किया । फिर मैंने प्रयास किया कि दूसरों को भी उसके विषय में सोचने पर मजबूर करूँ । बहुत से लोग तैयार हो गये । सोचने की शपथ ली । मैं उस दरम्यान कुछ-कुछ चिन्ता मुक्त हुआ । पर अविलम्ब ही स्थिति में

परिवर्तन आ गया। कुछ लोगों ने एकदम इतना अधिक उसके विषय में सोच डाला कि सेहत बिगड़ गई। वे बहुत झुंझलाए। मुझ पर भी, अपने आप पर भी। उनमे फूट पड़ गई और फिर से बात वही सिर्फ मुझ तक पहुँचकर रह गई। आखिर मैं ऐसा क्यों हो गया हूँ?……हठात्……ये सोचते हुए सर को जोरदार झटका देता हूँ, पर बात नहीं बनती। बोझ वहीं पर धरा हुआ लगता है।

जो लोग बसंत के संदर्भ मे निराश हुए, मैंने उनसे कहा—इतने जल्दी और इतनी तादाद में मत सोचो भाई। तुम लोग खुद को प्रगतिशील कहते हो। तुम्हारे सोचने की रफ्तार उतनी नहीं होनी चाहिये। मुझे संदेह है तुम लोग "अति-उत्साही" तो नहीं? प्रगतिशीलता का अर्थ हड़बड़ाहट नहीं होता। तुम लोग हड़बड़ा जाते हो और एकदम सब कुछ सोचकर निवृत हो जाना चाहते हो। बसंत अपना आदमी है। उसके प्रति दायित्वों का निर्वाह बौखलाहट और बेसब्री से किया तो यही परिणाम होंगे। मैंने ये बातें बहुत स्वाभाविक रूप से कही थी। पर उन्हें लगा था मैंने भाषण दे डाला है। वे लोग क्रुद्ध हो गये। मुझे खा जाने वाली निगाहों से घूरने लगे। मुझे लगा रात हो गई है। खाट पर पड़ा हूँ। अंधकार है। सामने डरावने चित्र उभर रहे हैं। उभरते ही जा रहे हैं। उनकी एक चादर बन गई है। मुझे ढंक रही है पर फिर भी मैंने अपने आपको बचाये रखा है।

मेरी हर बात उनकी समझ के परे थी। मैं सफल नहीं हुआ। वे मुझ पर हँसते हैं। अब वे बसंत के अतरंग नहीं रहे और मेरे साथ रही-सही मित्रता भी दुश्मनी में बदल गई। मेरे अदर भय समा गया है। मुझे उनसे डर कर रहना पड़ता है। डर है, कहीं वे लोग मुझ पर हमला न कर दे। भय की बेचैनी लगातार बनी रहती है। रात मे पुल पर बैठकर बीड़ी पीता हूँ। सामने के लैम्प-पोस्ट पर चमगादड़ों को लटके हुए देखता हूँ। मुहल्ले में एक मेटल इण्डस्ट्री है। इण्डस्ट्री की भट्ठी मे लगातार चोरी का माल गलाया जाता है। चोरों की सुविधा के लिए बल्ब फोड़ दिया गया है। घुप अंधकार है। पुल के

नीचे नाला गडगड़ा कर बह रहा है। अंधकार में सिर्फ मेरी बीड़ी की रोशनी चमक रही है। अचानक चमगादड़ें पंख फड़फड़ाती हैं। मुझे लगता है मैं उल्लू हूँ। सामने की रामकृष्ण आश्रम की दीवार पर नजर पड़ती है तो महसूस होता है वे लोग दीवार पर बैठे हुए है। अभी आकर मेरी बीड़ी छीन लेंगे। मुझे इतना मारेंगे कि मैं साँस तक भी न ले पाऊँगा और……

अजीब "कॉम्प्लेक्स" बना रहता है मस्तिष्क में। कॉम्प्लेक्स न हुआ पून निकलता फोड़ा हो गया। कभी-कभी रास्ते पर साईकिल चलाते हुए कालेज जाती हुई किसी लड़की से भिड़ जाता हूँ और आस-पास के लोग हँसते है, जूता मारने की धमकी देते हैं तो लगता है, मस्तिष्क है ही नहीं। बल्कि खोपड़ी में मस्तिष्क के खाँचे में "कॉम्प्लेक्स" घुस गया है। मस्तिष्क की चोरी हो गई है। मस्तिष्क की जगह कॉम्प्लेक्स किसने रख दिया? …इस पर विचार करता हूँ तो गुनहगार खुद को पाता हूँ। पर क्या पूरी तरह मैं गुनहगार हूँ? संदेह होता है। यह मेरी ही गलती है या उत्तरदायी परिस्थितियाँ की? प्रश्न मुझे जजीरों में कसते हैं। जवाब की तलाश में मैं दुगुना बेचैन हो जाता हूँ।

क्लब नहीं जाऊँगा, सोचता हूँ। उधेड़बुन दिमाग में चालू रहती है। घर की झंझटें, बेरोजगारी की समस्या, बहन के बच्चों की चिल्ल-पों। आखिर शान्ति कहाँ से मिले। मेरे लिये शान्ति का अर्थ शान्त वातावरण नहीं है। इस नज़रिए से देखूँ तो क्लब का वातावरण सबसे अशांत रहता है। मैंने सुना था अमेरिका में लोग बहुत शान्ति महसूस करते हैं। वहाँ किस तरह की शान्ति है बात समझ में नहीं आती। सुना है सारी दुनिया को हथियार बेचते हैं। शायद मैं अपनी तरह की शान्ति क्लब में जाकर खरीद लेता हूँ। संभवत: अमेरिका में कोई दूसरी प्रणाली से विक्रय होती हो। मुझे क्लब में कुल-जमा-खर्च थोड़ी बहुत शान्ति कुछ पैसों के एवज मिल जाती है। जब मैं क्लब में बीड़ी पीता हूँ तो लोग कहते हैं—"यार तुम्हारे आचरण और क्लब के "एटमास्फियर" में "कॉन्ट्रोडिक्ट" है। तुम क्लब में भी बीड़ी पीते हो और मैं सोचने लगता हूँ यह शब्द मैंने कहाँ सुना था। मैं फिर भी शान्त रहता हूँ।

मुझे शक है कही ठेकेदार उसे किसी विपत्ति में न फँसा दे। क्योंकि ठेकेदार से बचना बहुत मुश्किल होता है। आजकल ठेकेदारों के बीच ही वह रहता है। उनका घेरा उसके इर्द-गिर्द हमेशा बना रहता है। वे लोग उसका ध्यान मेरी ओर जाने ही नही देते।

लगातार कुछ दिन उससे मुलाकात नही हुई। मेरे दिमाग में तरह-तरह के खयालात आते रहे। कही वह किसी विपत्ति में तो नही फँस गया। क्लब गया तो एक सज्जन से पूछा भी—"बसन्त को देखा है ?" उसने उल्टा मुझसे प्रश्न किया—"कौन बसन्त ?"...मैं अवाक् खड़ा हो गया। मुझे लगा वह झूठ बोल रहा है। मुझे अवाक् देखकर उसने याद करने की मुद्रा बनाई। मैं भाँप गया वह समर्पण करने वाला है। मैं कुर्सी खींच कर अड गया। वह समझ गया कि मैं चिपकने वाला हूँ। वह समर्पित हो गया।—"अरे यार तुम, अपने बसन्त की बात कर रहे हो ? (मेरे अन्दर कही विजय की गुदगुदाहट होने लगी) यार वह आजकल क्लब नही आता। आजकल उसकी बैठक काफी-हाऊस में होती है। मुझे अन्दर ही अन्दर आश्चर्य हो रहा था और शायद खुशी भी। कुछ क्षण मैं सोचता रहा कि ऐसा क्यो हुआ ? बात समझ मे नही आई। एक आशा अंदर जागी कि शायद वह ठेकेदारों से मुक्त हो। पर ऐसी सम्भावना एक प्रतिशत ही थी। इसकी ही आशा ज्यादा थी कि चालाकी से ठेकेदारों ने स्थान बदल दिया हो। मैं फिर भी खुश हुआ। अचानक मैं खड़ा हो गया। अब उसके अवाक् होने की बारी थी। मेरे मुँह से अनायास निकला चमत्कार ! एकदम चमत्कार !!

वह जिज्ञासु हो गया। पूछा—कैसा चमत्कार ? मैं बसन्त के प्रति उसकी उत्सुकता बढ़ा रहा था। उसकी जिज्ञासा देखकर मैं बेहद खुश हुआ। मैंने जवाब नही दिया। तेजी से डग भरे और बाहर आ गया। मैं उसे लगभग चमत्कृत सा छोड़ आया। मैं बसन्त के विषय में कुछ ठोस निर्णय लेना चाह रहा था। बाहर आकर मुस्कुराता रहा। मुझे इस घटना से आभास हुआ कि लोग जागरूक हैं, बसन्त के प्रति उनमें जिज्ञासा है और मुझे अपनी विजय की आशा की पहली किरण दिखी। मुझे अचानक पिछले एक दिन की घटना याद

था गई। उस दिन मैं क्लब नहीं गया था। पर बसन्त से मुलाकात हो गई थी। मैंने उसे बहुत अच्छे ढंग से उसके भविष्य के विषय में सलाह दी थी। मेरा पेट उस दिन ठीक रहा था। मैं उस अवस्था मे अपने प्रति शंकित हो उठा था। एक रहस्य मुझे महसूस हुआ था। पर इस घटना ने रहस्योद्घाटन कर दिया। बदहजमी का कारण क्लब मे अनुपस्थिति नही बल्कि बसन्त से मुलाकात नहीं होना है। मेरी पेट की खराबी और बसन्त से सीधा सम्बन्ध है। बसन्त मेरे पेट के लिए औषधि की तरह है। क्लब मत जाओ पर बसन्त से मिल लो उसे स्वयं भविष्य के रास्ते समझाओ। बदहजमी पेट तक पहुँचेगी ही नहीं। सड़क पर खड़े-खड़े मैंने सारी बातें सोच लीं। मेरे अन्दर एक निर्णय उमड़ने लगा। मैंने एक योजना बना डाली। फिर काफी हाऊस की ओर बढ़ लिया।

रास्ते भर निर्मित योजना का पूर्व-नियोजन करता रहा। काफी-हाउस पहुँचा। बाहर सड़क पर से एक ठेकेदार सिगरेट का पैकेट लेकर अन्दर जा रहा था। मुझे देखकर ठिठक गया। उसके चेहरे की प्रफुल्लता अचानक विलुप्त हो गई। विषाद टपकने लगा। किसी तरह सभलकर मजाक की टोन में उसने कहा—"अरे यार वर्मा तुम इधर भी आ धमके।" और तेजी से अन्दर चला गया। सड़क पर कोई कुत्ता क्याऊँ-क्याऊँ करता हुआ दौड़ गया। किसी शरीफ आदमी ने उसे हकाल दिया था। मुझे हँसी आ गई। लगा ठेकेदार भयभीत हैं। जिसका मतलब यह है कि बसन्त अन्दर ही है।

मैं चुपचाप अंदर दाखिल हो गया। अंदर धुँआ भरा था। धुँए में तमाम बुद्धिजीवियों और बड़े लोगों की आत्माएँ तैर रही थीं। मेरी आँखों में न जाने कौन सा चश्मा चढ़ा था कि मैंने सारी आत्माओं को पहचान लिया। सेन्ट्रल टेबिल पर नजर दौड़ाई तो देखा बसन्त ठेकेदारों से घिरा बैठा है। उसकी हालत मुझे पहले से बदतर नजर आई। मुझे लगा शायद फँस गया है। चेहरे पर निराशा छाई हुई थी। मैंने सोचा बेचारा क्या करे उसका सारा धन तो इन्हीं ठेकेदारों के पास है। मेरी हिम्मत भी लडखड़ाई टेबेदारों के भारी-भरकम शरीरों को देखकर। बदहजमी का ख्याल आते ही मैं आगे बढ़ा। बढ़ते हुए मुझे लगा मेरे सिर पर "बुलेट प्रूफ" कैप है और हाथ में रायफल।

मुझे देखकर ठेकेदारों के मुँह में लगी सिगरेटें बुझ गईं। मैं अन्दर से खिलखिलाया। मैं पूरी तरह भयमुक्त हो चुका था। ठेकेदारों के गिद्ध जैसे चेहरे अस्पष्ट हो गये थे। मैंने बसन्त से कहा—"आओ दूसरी टेबिल पर बैठें। बसन्त ने उठने की कोशिश की। ठेकेदारों ने हस्तक्षेप किया। कोरस में मुझसे पूछा—"आप कौन है ?"

मैंने मुस्कराते हुए कहा—"मैं इनका शुभ-चिन्तक हूँ। मेरे जबाब पर कुछ क्षण वे मुझे देखते रहे। शायद कुछ सोचते रहे या मुझे तौलते रहे फिर कहा—"पर हम भी तो इनके हित चिन्तक है।" मुझे उनके स्वर दूर से आते प्रतीत हुए। उन लोगों ने मुझसे आग्रह किया—"आइए आप भी हमारे साथ ही बैठिए। उनका मतलब था मैं भी कोरस में गाने लगूँ। पर मैंने "शुभ-चिन्तक" और "हितचिन्तक" के अर्थ के विषय में सोचा। फिर बसन्त की ओर देखा। उसके चेहरे पर बेबसी छाई थी। मैंने उसे आँखों-ही-आँखों में आश्वस्त किया और ठेकेदारों के आग्रह को टाल दिया। योजना का पहला कदम मैं उठा चुका था। मैं जल्दबाज नहीं हूँ। मुझे आभास हुआ आने वाला समय निश्चित रूप से अच्छा होगा। ठेकेदारों के चेहरे उतर चुके थे। पर मैं जानता था ये लोग विरोध कर सकते हैं। मुझे इनसे एक-एक कर निपटना होगा। मैंने बसंत से कहा—मुझे एक जरूरी काम के सिलसिले में जाना है बाद में मिलेंगे। और मैं उन लोगों को उसी अवस्था में छोड़कर बाहर आ गया।

घर आ गया। रात एक सपना देखा। मैं पुल पर खड़ा हूँ। नीचे नाला शान्त बह रहा है। मेरे हाथ में बिना सुलगी बीड़ी है। मैं उसे सुलगाना चाहता हूँ। सामने की दीवार पर नजर जाती है। देखता हूँ वहाँ पुराने लोगों की जगह ठेकेदार बैठे हैं। सिगरेट फूंक रहे हैं। चेहरों पर बेचैनी है। मुझे घूर नहीं पा रहे हैं। उनके चेहरे पर बार-बार आग्रह के भाव आ रहे है। मुझे उनकी स्थिति पर आश्चर्य होता है। पर मैं प्रकट नहीं होने देता हूँ। मैं उनके पास तक पहुँचता हूँ। भयमुक्त रहता हूँ। उनसे सिगरेट लेकर अजनबी की तरह अपनी बीड़ी सुलगाता हूँ। वे शायद सोच रहे थे कि मैं उनके पास रुकूँगा

पर मैं ऐसा नहीं करता। वापस पुल पर आ जाता हूँ। मेरे पीछे उन लोगों की गुर्राहटें आती हैं। एक बार मैं फिर भयाक्रान्त हो उठता हूँ। तभी अचानक वे सब मिलकर मुझ पर कई तरह के हथियारों से वार करते हैं। मैं घायल जमीन पर गिर पड़ता हूँ। अर्ध अचेतावस्था में सुनता हूँ उनके सफल हो जाने का अट्टाहास। तभी चारों ओर से एक शोर उभरता है जो धीरे-धीरे तीव्र होकर मेरे पास आ जाता है। मैं देखता हूँ मेरी तरह के असंख्य लोग मुझे घेरे खड़े है। उनमें से कुछ लोग मुझे उठाते हैं। मैं पूरी चेतना में आ जाता हूँ और हम सब गुस्से से उनकी ओर बढ़ते हैं। वे डर कर लगातार भागते हैं। भागते ही जाते है। हमारा गुस्सा बढ़ता जाता है। और फिर अचानक मेरी नींद खुल जाती है।

सुबह हो चुकी थी। मैं लैट्रिन गया। खुलासा दस्त हुई। मैं एक बार बाहर से खिलखिलाया। वहीं बैठे-बैठे सपने के रहस्य को समझा। निवृत्त हुआ और नहा-धोकर तेजी से काफी-हाऊस की तरफ बढ़ गया। मुझे दूसरा कदम उठाना था।

□□

बीच-बचाव

ठण्ड पड़ना शुरू हो गई थी और कोहरा छाया हुआ था। आज की सुबह मेरे लिए खुशी लेकर आयी थी। खुशी के पीछे कोई भाग्योदय वाला मामला नही था। आम तौर पर ठण्ड के दिनो में मुझे कोहरा बहुत अच्छा लगता है, और फिर मेरे जैसे व्यक्ति का भाग्य होता ही नही और मैं चाहता भी यही हूँ कि किसी का भी भाग्य नही होना चाहिए, क्योकि जब इस शब्द को बढ़ाकर "दुर्भाग्य" बना दिया जाता है तो स्थिति बहुत तकलीफदेह हो जाती है। कम-से-कम मैं तो उस स्थिति तक नही पहुँचना चाहता, इसलिए भाग्य पर विश्वास नही करता। कभी-कभी अगर कोई जान-पहचान वाला भाग्य के विषय मे कुछ कहता है तो मुझे उसका अपभ्रंश "भाग" सुनाई पड़ता है, और मैं तुरन्त वहाँ से भाग जाता हूँ।

सुबह कोहरे के कारण मन खुश था। कोहरे के वातावरण से मुझे इसलिए भी लगाव है कि इसके चारों ओर फैल जाने से मैं स्वयं को इस शहर में रहते हुए भी चंद घंटो के लिए पहाड़ी इलाको मे महसूस लेता हूँ। सुबह साढे पाँच बजे नीद खुली तो सबसे पहले खिड़की के परे चर्च वाले मैदान पर निगाह

गई। विशालकाय चर्च कोहरे में लिपटा था। कोहरे के कारण उसकी ऊँचाई पहले की अपेक्षा अधिक लग रही थी। लगता था कोहरा न होकर घने बादल उसके इर्द-गिर्द लिपटे हो। खिड़की के नजदीक जाकर बाहर देखा, घास पर ओस जमी हुई थी। सामने सार्वजनिक पम्प पर मोहल्ले की औरतें नहा रही थी। मुझे प्रशिक्षण के लिए जल्दी जाना पड़ता है, पर खिड़की के बाहर देखते-देखते एक पल सोचा कि आज गोल मार दूँ क्या ? फिर दूसरे पल "कैरियर" का ध्यान आते ही लैट्रिन की ओर खिसक लिया। सात बजे तक नहा धोकर तैयार हुआ, माँ से लंच-बाक्स लेकर साइकिल निकाली और चल पड़ा। साइकिल चलाते हुए थोड़ी देर पहले सोची कैरियर वाली बात फिर से दिमाग में मँडराने लगी, और मुझे पश्चाताप होने लगा कि "कैरियर" जैसे बड़े शब्द का इस्तेमाल करके, मुझ जैसे छोटे आदमी ने जघन्य अपराध कर दिया है। कैरियर नहीं, बल्कि मुझ पर या मुझ जैसो पर रोजी-रोटी शब्द ज्यादा फबते हैं। हो सकता है कुछ लोग जो ज्यादा समझदार होते हैं, मुझे "फ्रस्ट्रेटेड" या "कुण्ठाग्रस्त" कहें, मुझे परवाह नहीं। और यदि ऐसा है भी तो कहने वाले खुद मुझे उससे निकालें। बहरहाल मैंने अपराध तो कर ही दिया था और वह भी जघन्य, क्योंकि बुजुर्गों ने कहा है—"अनजाने में किया गया अपराध क्षम्य होता है पर जानते हुए अपराध करने की योजना ही बना लेना बहुत बड़ा अपराध है।" कुछ ऐसे ही उपदेश मुझे दुखी करने लगे, और मैं साईकिल झुककर चलाने लगा। घर से सात-आठ किलो मीटर दूर प्रशिक्षण केन्द्र मुझे आज अधिक दूर लग रहा था। कोहरा पूर्ववत था पर खुशी लुप्त हो चली थी। आँखों के सामने मेरे ट्रेड के अनुदेशक का चेहरा घूम रहा था और उस चेहरे पर बार-बार "उपदेशक" का चेहरा फिट हो जाता था। इसका कारण मुझे देर से समझ में आया। कुछ दिनों पहले अनुदेशक महोदय ने मुझसे कहा था कि तुममे आत्मबल नहीं है। मैंने जवाब दे दिया था कि मेरी आत्मा ही नहीं है। कमरे के मेरे साथी प्रशिक्षार्थी ठहाके लगाने लगे थे, और अनुदेशक को लगा था कि उनका अपमान किया जा रहा है, जब कि ठहाके मुझे बेवकूफ समझ कर लगाये गये थे। अब कह नहीं सकता अनुदेशक महोदय ने स्वयं को "क्या" समझा।

टहाके जब शांत हुए तो विषयांतर हो गया था और उन्होंने आशुलिपि के विषय में समझाना छोड़कर "आत्मबल" पर एक लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दे डाला था। उनके व्याख्यान मे "मैं" का बहुतायत में प्रयोग हुआ था और मैं जार्ज बुजियफ के "मल्टी-आइनेस" के सिद्धान्त को चरितार्थ होते महसूस कर रहा था। जार्ज बुजियफ के समान्तर सोचना दार्शनिकता है। इसलिए उस समय मैंने सोचने की प्रक्रिया पर पकड़ ढीली कर दी और परिस्थिति से समझौता करने की सोचने लगा। फिर अन्दर से लगा इस तरह सोचना भी गलत है, इसलिए व्याख्यान के दौरान ऊंघने लगा। ऊँघते हुए मुझे अनुदेशक का चेहरा उपदेशक की भांति लगने लगा। इसलिए आज सड़क पर साइकिल चलाते हुए अनुदेशक-उपदेशक होने लगा था। यह क्रिया लगभग पूरे रास्ते भर यातायात की लाल-हरी बत्ती के जलने-बुझने की क्रिया से दस गुना तेजी से होती रही।

इस क्रिया ने आँखों और मस्तिष्क को थका दिया था। कोहरे का आनन्द समाप्त हो गया था। एक बोझिलता थी। केवल बोझिलता। प्रशिक्षण केन्द्र के गेट तक पहुँचा तो साढे सात बज रहे थे। दूसरी गलती का एहसास हो रहा था। समय से पहले पहुँच जाने का। क्लासिस आठ बजे से लगनी थी। गेट के अन्दर नहीं गया। राघू के पान के ठेले पर पहुँच गया। एक सिगरेट ली और जलाकर पीने लगा। फिर पान के ठेले के आस-पास घूमता रहा। कुछ समझ में नहीं आया तो स्थिर खड़ा हो गया।

सिगरेट के चार-छै कश लेने के बाद महसूस हुआ कि कोहरा पूरी तरह छट चुका है। सामने सड़क गुजर रही थी। सड़क की दूसरी ओर प्रशिक्षण केन्द्र की फैंसिंग लगी हुई थी। फैंसिंग के किनारे-किनारे बेशरम की घनी कतार चली गई थी। गुलाब के फूल या चमेली के पौधे कतई नही थे। सिर्फ बेशरम की बेशरमाई थी। बेशरम की ग्रोथ दुनिया की आबादी की तरह ही होती है क्योंकि दुनिया की अधिकांश जगहों में बच्चे भगवान की देन होते हैं। बाद में भगवान उन्हे नंगे घुमाता है, ठंड में ठिठुराता है, और कभी-कभी "पोलियो" वगैरह से मार भी डालता है। बाद में माँ-बाप कहते हैं—जैसी भगवान की

इच्छा— ।" अच्छी हरकतें करता है भगवान । दुनिया में कोई ऐसी अदालत नहीं है जिसमे उसकी जाँच के लिए आयोग गठित किया जाए ? जो लोग जानते हैं कि भगवान का अस्तित्व है तो उन्हे चाहिये कि लोकतान्त्रिक पद्धति के अनुसार उसका पता दुनिया की विभिन्न सरकारो को बतायें और उसे यथेष्ठ दड दिलवाने मे सहयोग करें ।

दमोह जाने वाली बस घरघराते हुए निकल गई । दूर तक डीजल के काले बादल छा गये । आँखें जब देखने लायक हुई तो सडक पर दूर से एक रिक्शा आता दिखाई दिया, और आकर गेट के करीब रुक गया । रिक्शे से दो व्यक्ति उतरे जिनके चेहरो पर ब्रेक फास्ट लेने के बाद की आभा स्पष्ट दीख रही थी । पीछे से एक स्कूटर आई जिस पर सवारी करने वाला व्यक्ति हमारे प्रशिक्षण केन्द्र के किसी ट्रेड का अनुदेशक था । उसे मैं पी० सी० सक्सेना के नाम से जानता था । उसका शरीर बहुत गठीला था । स्कूटर चलाते समय वह और अधिक गठीला हो जाता था । उसने दोनो व्यक्तियों के पास स्कूटर रोकी और उन लोगो से हलो-हलो करने लगा । उसी वक्त दोनों आगन्तुको मे से किसी ने जोर मे कहा—"अरे पी० सी० स्साले ! तुम यहाँ !!"

बात मेरी समझ में आ चुकी थी कि ये दोनो व्यक्ति कहीं बाहर से आये है और पी० सी० उनके पूर्व-परिचितो में से है । साले कहने का ढंग घनिष्ठता का परिचायक था । क्योंकि किसी को साले कह देने से आप उसकी बहन के पति हो जाते हैं । ऐसे सम्बोधन आजकल राष्ट्रीय समन्वय को बढ़ा रहे है । इस तरह समन्वय तो हो ही रहा है, साथ-साथ लोगो की बहनें भी ठिकाने लग रही हैं ।

रिक्शा वाला पैसे लेने के लिए खड़ा था । उसके चेहरे पर आते-जाते भाव बता रहे थे कि वह जल्दी मे है, पर वे लोग व्यर्थ की बातचीत मे उसका समय नष्ट कर रहे थे । मजदूर का समय पूंजीपतियो के लिए अमूल्य होता है । कोई बिल्डिंग बन रही हो और यदि पसीना बहाता हुआ मजदूर कुछ देर सुस्ताने के

लिए रुक जाय तो ठेकेदार उसे काम करने की तुतारी लगाने लगते है। पर यहाँ उल्टा हो रहा था। उन लोगो को उसके समय की अमूल्यता की कोई परवाह नही थी।

फटी हाफ पेंट और फटी हुई शर्ट पहने वह हाँफ रहा था। उसने एक बार उन व्यक्तियो से पैसे के लिए कहा भी। उनमे से एक ने अपनी जेब में पैसे निकालने के लिए हाथ डालने का उपक्रम शुरू किया। वह इस इन्तजार मे था कि दूसरा भी वैसा करे। दूसरा निश्चिन्त होते हुए भी सतर्क था। उसने अभी तक जेब मे हाथ नही डाले थे और पी० सी० से बातचीत करते हुए, व्यस्तता और बेखबरी का अभिनय कर रहा था। शरीफ लोग हमेशा ऐसा करते है। एक खास परम्परा इन्होने बना ली है। पैसो के मामले मे हमेशा एक-दूसरे का मुँह ताकते रहते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से दोनो परस्पर मुँह तकाई कर रहे थे, क्योंकि प्रत्यक्ष मुँह ताकना इनके लिये असभ्यता का प्रतीक होता है। आश्चर्य मुझे इस बात पर होता है कि ये लोग फिर भी परस्पर संजीदगी को निभा लेते हैं। इनके लिए यह एक "सामाजिक समझौता" है। ये लोग मैं दे देता हूँ, मैं दे देता हूँ कहने वाले है। इनमें हमेशा वही हारता है जो अधिक समय तक इस वाक्य को दोहराता है।

अन्ततः पहले को ही हार माननी पड़ी। उसने कुछ पैसे निकाले और रिक्शा वाले की ओर बढ़ा दिये। दूसरे को जैसे ही यह आभास हुआ, उसने बहुत तेजी से अपनी जेब में हाथ डाला और पर्स निकाला—"कितने पैसे देने है इसको ?" पहले से प्रश्न किया। चेहरे पर खीज और अफसोस के भाव लाए हुए पहले ने कहा—"मैंने दे दिये।" दूसरे ने फिर कमीनगी से कहा—"अरे मुझे बताया ही नही, तुमने क्यों दे दिये यार।" पहला बुरी तरह खीजा हुआ था फिर भी कहा—"अरे कोई बात नही, चलता है।" दोनो श्रेष्ठ अभिनय कर रहे थे।

मैं उन लोगों की बातचीत सुन रहा था। अन्दर कही से इच्छा हो रही थी कि जाकर दोनों को एक-एक झापड़ रसीद कर दूँ। मैंने अपनी इच्छा को बमुश्किल दबाया हालांकि ये दबाव मुझे अच्छा नही लगा।

रिक्शा वाला पैसे गिन रहा था। पैसे गिनने के बाद उसे आश्चर्य हुआ, और उसने कहा—"साहब पैसे कम है। आपने पौने दो रुपये में रिक्शा तय किया था।" दोनों व्यक्ति पी० सी० की ओर मुखातिब थे, और रिक्शा वाले की बात को अनसुनी कर गये थे। रिक्शा वाला दूसरी बार अपनी भावना को दोहराने की स्थिति की तैयारी कर रहा था। तैयारी में उसे दो या तीन मिनट लग गये थे। तब तक पी० सी० उन दोनों को लेकर अन्दर बढ़ने लगा था। रिक्शा वाले ने फिर टोका—"साहब पैसे कम है, आपने पौने दो रुपये में रिक्शा तय किया था और सिर्फ सवा रुपये दे रहे है।" इस बार रिक्शा वाले का वाक्य चिढ़चिढ़ाहट लिए हुए, लम्बा और ऊँचा था। उन लोगों को सुनना ही पड़ा।

पी० सी० ने नेतृत्व सम्भालते हुए कहा—"जितने दिये है, रख लो और चलते बनो।"

रिक्शा वाला तैश में आ चुका था। उसने भी जवाब दिया—"ऐसे कैसे; कम पैसे रख लूँ और चलते बनूँ, पूरा पैसा दीजिए।" पी० सी० गुर्राने लगा—"ज्यादा चिकचिक मत करो और चुपचाप चले जाओ।" यह रिक्शावाले के लिए चेतावनी थी।

"आप मेरी बात नहीं सुन रहे हैं।" रिक्शावाले ने नर्म पड़ते हुए कहा।

"मुझे तुम्हारी कोई बात नहीं सुननी है"—पी०सी० ने कहा। वह शायद समझ रहा था कि रिक्शावाला इतनी धौंस में टल जायेगा, पर रिक्शावाला नहीं टला और उनके पीछे-पीछे प्रिमिसेस के अन्दर दाखिल हो गया।

"साहब हमारे पूरे पैसे दो नहीं तो मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।" अबकी बार रिक्शावाले ने धमकी दी। पी०सी० ने उसे एक धक्का लगाया और दरबान से कहा—"दरबान इसे बाहर निकाल दो।" दरबान ने लपक कर उसे पकड़ लिया। रिक्शावाला अपनी बाँह छुड़ाकर दौड़ा और दोनों व्यक्तियों में से एक को पकड़ लिया।

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

पी०सी० को अपने गठीले बदन में खुजलाहट होने लगी। उसने दूसरे ही क्षण जोर से एक घूँसा रिक्शावाले के मुँह पर मारा। साथ ही एक वाक्य ऐसा उसके मुँह से निकला जो कतई एक अनुदेशक की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं था।

रिक्शावाला जमीन पर गिर चुका था। आस-पास प्रशिक्षार्थी एकत्र हो गये थे, पर उनके चेहरों पर मात्र साँप और नेवले का तमाशा देखने की उत्सुकता के भाव थे। कुछेक दबी हँसी हँस रहे थे। मुझे अपने संस्कारों के कारण रिक्शावाले से सहानुभूति नहीं थी। फिर भी मुझे लग रहा था कि आस-पास जमा हुए लोग और प्रशिक्षार्थी या तो पागल हैं या इनकी इन्सानियत मर गई है। आजकल वैसे भी उसकी आयु पहले की अपेक्षा कम है। मुझे महसूस हो रहा था कि जिस तरह यह घटना घटी है, उस स्थिति में चारों तरफ के वातावरण और लोगों में ऐसी असंगति, या तो नपुंसकता है, या आदमी बहुत तेजी से स्वार्थी हो रहा है, या फिर ऐसी स्थिति से इतनी बार गुजर रहा है कि ऐसी स्थितियाँ उसके लिए केवल मनोरंजन बन के रह गई है।

घटना इतनी शीघ्रता से और अप्रत्याशित ढंग से हुई थी कि मैं कुछ भी न कर सका था और दूसरे लोगों की तरह तमाशा देखता रह गया था। रिक्शावाला अपना मुँह सहलाते हुए कराह रहा था। मैंने आगे बढ़कर उसे उठाया। मेरे इस तरह आगे बढ़ने से कुछ लोगों की मानवीयता खुजलाने लगी और वे लोग छटपटाहट के अन्दाज में, मेरा साथ देने के लिए आगे बढ़े। एक-दो ने पूछा—"कहीं चोट तो नहीं लगी ?"—एकदम बनावटी और कामचलाऊ औपचारिकता वाला प्रश्न था। कुछ और लोग बढ़े और उसका कपड़ा झाड़ने लगे। और भी जाने कितने सहानुभूतिपूर्ण प्रश्न किये। पर इतना सब कुछ हो गया और मैंने रिक्शावाले से कुछ भी नहीं पूछा। रिक्शावाला उनके प्रश्नों के कारण उनसे आश्वस्त दिख रहा था, जबकि मेरी ओर उसने एक बार भी निगाह नहीं डाली थी। इसका कारण यह था कि मैंने जमीन से उठा तो जरूर दिया था, पर इतने अच्छे प्रश्न मैंने नहीं किये थे। कर भी नहीं सकता क्योंकि ये सब मेरे पिताजी ने नहीं सिखाया और बहुत जल्द स्वर्गीय हो गये। सिखा दिया होता तो मेरी गिनती "सम्मानितों" में होती।

रिक्शावाला लगभग रुआसा हो गया था। मैं उसे लिए बाहर आ गया। उसे बाहर लाते-लाते मैंने उसके कान मे कहा—"तुम गरीब हो, एक घूंसे में तुम्हारी बेइज्जती नही हुई है, सिर्फ तुम्हारे गाल मे मामूली चोट आई है। अब तुम्हें तुम्हारे पैसे चाहिये तो बाहर सड़क से उसे ललकारो और जब वह बाहर आये तो उसे उतनी ही जोर से मारो जितनी जोर से उसने तुम्हे मारा है। घबराना नही मैं तुम्हारे साथ हूँ। याद रखो तुम्हे सिर्फ गाल मे चोट लगी है, पर यदि तुम उसे मारोगे तो उसकी इज्जत पर चोट लगेगी, क्योंकि ऐसे आदमी को कहीं भी मारो सीधे इज्जत पर चोट लगती है।"

रिक्शावाले ने मेरी बात ध्यान से सुनी और उस पर राजी हो गया। मेरी इस योजना से उसे काफी बल भी मिला था क्योंकि जल्द ही उसने आंसू पोंछ लिये थे और मोर्चे के लिए तैयार हो गया था।

मेरे इर्द-गिर्द पूछने वाले उत्सुक लोगो की भीड़ जमा हो गई। मैंने भीड़ के सारे पूछने वालो को दुर्घटना का वर्णन कुछ इस तरह सुनाया कि थोड़ी देर मे चारो ओर बातचीत के बीच मे "बहुत बुरी बात है", "बहुत बुरी बात है" की आवाजें उठने लगी। मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने एक आशाजनक माहौल रिक्शावाले के लिए बना डाला था। आस-पास के लोगो के प्रति मेरा भ्रम दूर हो गया था।

भीड़ बढ़ती जा रही थी। मैं फिर राधू के ठेले पर आ गया था। सड़क की दूसरी ओर रिक्शा वाला खड़ा होकर पी०सी० को ललकार रहा था। पी०सी० अन्दर जाकर अभी तक बाहर नही आया था। प्राचार्य अपने कमरे से निकलकर जेब में हाथ डाले खड़े थे। उनके चेहरे पर अनभिज्ञता के भाव थे, जबकि घटना के विषय में उन्हे पता चल ही गया था। रिक्शावाला लगातार पी०सी० की माँ-बहनो से अपनी रिश्तेदारी बखान कर रहा था। उसके चारो ओर राहगीरों और प्रशिक्षार्थियो की भीड थी। कुछेक लोग प्रशिक्षण केन्द्र की ओर देखकर हँस रहे थे। सभी को पी०सी० का इन्तजार था। मैं सोच रहा था अगर पी०सी० कुछ देर और नही आया तो भीड़ उग्र हो जायेगी। सम्भव

ई पत्थर चलाने लगे। कुछ भी हो सकता है। अच्छा है कुछ न कुछ तो होना ही चाहिये तभी तो पी०सी० का घमंड उसे बाहर आने पर मजबूर करेगा।

मैं चाहता था कि पी० सी० जैसे लोग जो खुद को दुनिया का बाप समझते हैं, ऐसी मार खायें कि "राजा-बेटा" बन जाएँ।

अब तक रिक्शा वाले के साहस को देखकर मुझे उसके प्रति गहरी सहानुभूति हो गई थी। मैं किसी भी कीमत पर पी० सी० को बाहर आने पर मजबूर कर देना चाहता था, और उसके अभिमान को नष्ट करना चाहता था। थोडी देर मे कुछ लड़के नारे लगाने लगे थे—"पी० सी० बाहर आओ! पी० सी० बाहर आओ!!"

नारों के दौरान ही पी० सी० तेजी से बाहर आता दिखाई पडा। वह गुस्से से उबल रहा था। मुझे उसका उबलना देखकर सेंक महसूस हो रही थी, जबकि रिक्शावाला हतप्रभ सा मुझे देखने लगा था। मुझे डर था कि रिक्शा वाले का साहस कहीं जवाब न दे जाये। मैंने उसे इशारा किया कि मैं उसके साथ हूँ। उसने फिर ललकारा—"आओ! मारो, अबकी बार मैं देख लूंगा"—पी० सी० दौड़ता-सा उसके करीब पहुँचा और उसे मारने के लिए हाथ उठाया। मैंने बढकर तुरन्त उसका हाथ पकड लिया। यही वह क्षण था जबकि रिक्शा वाले को अपना काम कर जाना चाहिए था। पर उसी समय कोई दौडता हुआ आया और—"क्या है? क्या है सुमेर? क्या हो रहा है?"—उसने रिक्शा वाले को आवाज दी। आवाज देने वाला मशीनिस्ट ट्रेड का अनुदेशक देवसरे था। वह शायद रिक्शा वाले को पहचानता था। रिक्शा वाला उसे देखकर गिड़गिड़ाने लगा—"साहब मेरे पैसे दिलवा दीजिए, अब आप आ गये हैं मुझे कुछ नहीं करना है।"

मैंने पी० सी० का हाथ छोड दिया था। वह मेरे पास ही खड़ा मुझे बुरी तरह घूर रहा था। देवसरे की ओर देखते हुए कहने लगा—"देवसरे आप ही समझाइये इसे, राइट टाउन से यहाँ तक आने के पौने दो रुपये माँग रहा है, यह इन्सानियत है?"

इन्सानियत के नाम पर मुझे बहुत "गुस्सा" आया। मैंने पी० सी० से कहा—"नही इन्सानियत तो इस रिक्शा वाले के मुँह पर सूज आई है।" पी० सी० मुझसे नही लड़ सकता था, उसे मेरा पिछला रिकार्ड मालूम था। चुपचाप देखता रहा।

रिक्शा वाला मुझसे कहने लगा—"रहने दीजिए साहब। अब हमारे साहब आ गये हैं अब जैसा ये कहेंगे वैसा ही होगा"। जिसका आशय देवसरे से था। देवसरे के चेहरे पर गर्व की मुस्कुराहट थी ठीक किसी नेता की तरह। ऐसे चेहरे देखकर मुझे हँसी भी आती है और गुस्सा भी। पर मैं उस समय रोष मे इस बात पर था कि देवसरे दाल-भात मे मूसरचन्द की तरह जबर्दस्ती बीच मे घुस आया था।

मुझे लग रहा था कि रिक्शे वाले को अच्छी तरह नही समझा पाया था कि उसे वास्तव मे क्या करना चाहिये। और देवसरे के आगमन ने घटना को समझौते की ओर मोड दिया था। मुझे दुख था कि मैं रिक्शे वाले को पैसे नही दिलवा पाया था। बात इतनी नही थी बल्कि पी० सी० को एक सबक देने की थी, पर देवसरे बीच मे आ गया था जिससे रिक्शावाला काफी प्रभावित था।

देवसरे एक हाथ रिक्शावाले के कन्धे पर रक्खे हुए था और दूसरा हाथ पी० सी० के कन्धे पर रखे हुए था। दूसरे ही पल वे लोग चाय की केन्टीन की ओर बढ़ रहे थे। देवसरे दोनो को कुछ समझाते हुए आगे बढ़ रहा था। घटना को समझौते की ओर बढ़ते देखकर भीड़ बहुत उदास हुई थी और छट गई थी। लोग आपस में घटना के विषय मे चर्चा करते हुए आगे बढ़ रहे थे। वे लोग समझौते की बात नही कर रहे थे। वे सब देवसरे को गाली बक रहे थे। मुझे खुशी थी कि भीड़ मे लोग अच्छे थे।

सडक सुनसान हो चुकी थी। कोहरा कही नही था, पर मुझे लगा सड़क पर भीड फिर भी शेष है।

□□

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

इस दौरान

ये एक संभ्रान्त इलाका है। यहाँ लोगों को अपने घर के आगे कम्पाउन्ड बनाने का शौक है। कम्पाउन्डों में हरियाली भी है। सड़क पर बड़े-बड़े हरे-हरे पेड़ लगे हुए हैं। यह जिस तरह का वातावरण है वह हमेशा गलतफहमी में जी रहे आदमी के लिए अच्छा हो सकता है। मेरे लिए कभी नहीं हुआ। उन कम्पाउन्डों में हमेशा कुत्ते टहलते होते हैं जो विदेशी किस्म की नस्लों के होते हैं। कम्पाउन्डो की खूबसूरत दीवारें सड़क के सामानान्तर मीलों दूर तक निकल गई हैं। बड़े-बड़े शहरों मे मैंने अक्सर देखा है ऐसे इलाके विकसित हो रहे हैं और आदमी की अपेक्षा वहाँ कुत्ते ज्यादा देखे जा सकते हैं। आदमी अगर सड़क से गुजरे तो वे अपने कम्पाउन्डों के दरवाजों पर खड़े होकर भूंकते हैं।

ऐसा नहीं कि मैं अचानक इस इलाके में आ गया हूँ। मैं यही पैदा हुआ हूँ। जब मैंने जिन्दगी की शुरुआत की थी, यह मेरे लिए बहुत माकूल जगह थी। एक सुगन्धित और ठंडी हवा चारों ओर बहती रहती थी और दिल में हरापन रहा आता था। खुशी का ठिकाना नहीं रहता था। लेकिन अभी के कुछ वर्षों में ऐसी असंगतता देखने मिली कि मैं सहन नहीं कर पाता। कुछ

बहुत अच्छे लोग कहते हैं, ऐसा सभी जगह है। यह कुछ ऐसी बीमारी है जो बहुत सी जगहो में एक भयंकर उमस तैयार कर रही है। जो लोग ऐसा कहते हैं वे संख्या में बहुत कम हैं और बुजुर्गों मे आते हैं। इस असंगतता के कारण जिस बीमारी से मैं ग्रस्त हूँ उसे वे महसूस करते है, पर उसमे रूह को नष्ट होती हुई भौतिकता की वजह से मुक्त है। वे अवसर कहते हैं कि उनके दिन लद गये। वे यह सब कुछ विरासत मे छोड़ रहे हैं। लेकिन इस उमस के चलते मेरी रातो की नींद हराम होने लगी। मैंने एक बात खास तौर से महसूस की कि रगों मे खून बहुत तेजी से दौड़ने लगा है। लोग कह सकते है कि ऐसा जवानी मे होता ही है और यह एक बेहतर संकेत है जवानी का। पर मेरी स्थिति यह थी कि मैं सीधे-सीधे इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता था, जिसकी वजह से जवान होने का सही संकेत मैं अपने अन्दर नहीं पाता था। उखड़ी हुई मन.स्थिति के कारण मैं हर वातावरण मे एक "मिस-फिट" चीज सा होता जा रहा था। इसलिए चिंतित परिवार के निर्देशन मे मैं डॉक्टर से चेक कराया गया। मेरी छाती मे स्टेथेस्कोप को यहाँ-वहाँ फिराते हुए उसने बहुत डरावना चेहरा बनाया। मैंने देखा वह मेरे सामने कुछ बोला नहीं। एक बुदबुदाहट उसके होठो पर आई जिससे उसके होठ लाल हो गये। वह घर के किसी बुजुर्ग को बाहर ले गया। बाहर खुसफुसाहट गूंजती रही। उसके चेहरे पर वही पुराना भाव था। मैंने कान लगाये तो सिर्फ इतना सुन पाया "उच्च रक्तचाप।"

उसी दिन डॉक्टर के चले जाने के बाद मैं घर के तमाम लोगो से घिर गया। कुछ देर सब मौन रहे। सबकी नजरो मे जो भाव था उससे लगता था मैं कोई भयंकर अपराधी हूँ जो जेल तोड़ के भागा है। फिर माँ की सिसकियों से मौन टूटा। मुझे घर के बच्चे आश्चर्य से देखने लगे। बड़ो के मुँह से उपदेशो की बौछार होने लगी। फिर मेरे सामने दवाइयो का ढेर था। मैंने दवाइयाँ खाने से इन्कार कर दिया। इसके पीछे मेरी कोई जिद नही थी। सिर्फ एक बात मेरी समझ मे थी जो सौ प्रतिशत सही थी कि मैं अपने शरीर में पल रही

गतिविधियो को किसी डाक्टर की अपेक्षा ज्यादा समझता हूँ। आखिरकार यह निर्णय लादा गया कि मैं प्राकृतिक चिकित्सा लूँ। पेट में उलजलूल निगल जाने से बेहतर मैंने इसे ही समझा। इसलिए मैं रोज सुबह सूरज निकलने के पहले पर रोशनी होते ही हवाखोरी के लिए घर के बाहर धकेल दिया जाता। जब मैं सुबह निकलता तो सारे इलाके में सन्नाटा छिछा होता। लोग अपने घरो में सोते होते। न जाने क्यों मुझे यह अच्छा लगता कि लोग सो रहे है। इसलिए मैं घर से खुद निकलने लगा और धकेलने की जरूरत लगभग खत्म हो गई।

कुछ ही दिन बीते थे मुझे निकलते हुए। घर में माँ ने बताया कि ये बसन्त के दिन हैं। चूँकि इस अच्छी खासी उम्र में होने के बावजूद बसंत मैंने अभी तक देखा नही है इसलिए मुझे उसकी विशेष जानकारी नहीं है। बचपन में पाठ्यक्रम की किताबों में अवश्य उसे पढ़ा था। उस पर लिखी गई कविता की एक लाइन मुझे अभी भी याद है—"कुकु—जग—जग—पू—वी—टू—विटा—वू।" किसी चिड़िया की आवाज बसन्त के दिनों मे कुछ इसी तरह पेड़ों पर गूँजती होती है। ऐसा अभिप्राय था उस लाइन का। मैं सुनने की कोशिश करता। दूर-दराज घने और विशाल पेड़ों पर नजर दौड़ाता। पर मुझे कहीं भी कोई चिड़िया ही नही दिखती। उसकी आवाज का प्रश्न तो बाद में उठता है। कउओं की कांव-कांव ही बराबर वातावरण में छाई रहती। मुझे माँ की सूचना पर अविश्वास होता तो मैं उससे झगड़ पड़ता तब वह कहती—"बेटा, कलयुग आ गया है इसलिए ऐसा है। तब मैं सोचता मेरे लिए कलयुग का क्या अर्थ है। आसमान में नजर दौड़ाता तो दूर-दूर तक धूल की आँधियाँ चलती देखता। मैंने झरते हुए पत्तो और मटमैले आसमान को देखते हुए बहुत तीव्रता से महसूस किया कि बीमारियाँ चारों ओर हैं आसमान भी उससे नही बचा है। लगातार एक कड़ुवा सा भय शरीर में समाता रहता।

बीच में कितने दिन ऐसे निकल गये मुझे याद नही। एकदम घटना विहीन खिसकती-सी जिन्दगी लगती। एक दिन सुबह जब मैं घूमने निकला तो कम्पा-उन्डों की दीवारों पर नारे लिखे थे। मेरी निगाह उन पर पड़ी तो मैं कुछ

क्षणों के लिए हतप्रभ-सा रह गया। दीवारों पर किया गया वह प्रयास मुझे अप्रत्याशित लगा, क्योंकि मैं घटनाओं के प्रति बुरी तरह पूर्वाग्रही था। किसी तरह की सार्थकता की बात मैं सोच भी नहीं पाता था। इसलिए मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। दीवारों पर लिखे नारों में बसंत की बुलाहट का आह्वान था। उनमें यह भी लिखा कि आजकल बसंत इस ओर क्यों नहीं दिखता और लोग बीमार क्यों हैं, आसमान में धूल की आँधियाँ क्यों चल रही हैं इत्यादि? मेरे सारे प्रश्नों का समाधान उनमें था। मैंने नारों को गौर से देखा। दीवारों के करीब गया। उनको छूकर देखा। रंग ताजा था। मैं जहाँ खड़ा था लिखने वाले को देखने के लिए वहीं खड़े-खड़े चारों ओर घूम गया। कोई दिखा नहीं। हवा तेज चल रही थी। पहली बार मैंने महसूस किया कि हवा में किसी तरह के संगीत का धीमा स्वर है। दीवारें, जहाँ मैं खड़ा था उससे काफी आगे तक रंग दी गई थीं। मैं दौड़ता हुआ आगे बढ़ा। कोई तेजी से लिख रहा था। मुझे लगा अचानक मैं अपनी बीमारी से मुक्त हो गया हूँ। खुशी गर्दन तक पहुँच गई थी। मैंने चाहा लिखते हुए आदमी से बात करूँ। फिर इस एहसास ने मुझे रोक लिया कि इसका समय बहुत कीमती है। जितनी देर में मैं अपनी खुशी जाहिर करूँगा वह उतनी देर में चार लाइनें लिख लेगा। मैं खुशी को किसी तरह दबा नहीं पा रहा था और वह मेरे अंदर से फूटकर निकल जाना चाहती थी। मैं तेज दौड़ता हुआ घर पहुँचा। सुबह का वक्त था। इसलिए घर के बरामदे में, सब लोग बैठकर चाय पी रहे थे। एक पल खड़े होकर मैं साँस थमने का इन्तजार करता रहा। फिर मैंने, घर के लोगों को वह खबर दी। लोगों के चेहरों के भावों में अचानक जो परिवर्तन दिखा वह मेरी आशा के विपरीत था। चाय के घूँट उनके मुँह में ही रह गये। बच्चे चिल्ला पड़े, "माँ देखो चाचा को क्या हो गया है वे दौड़ते हुए आये हैं। पिता का पहले से निराश चेहरा और निराश होकर भयाक्रांत हो गया। बच्चों की कौतुक चिल्लाहटों के सिवाय वातावरण मौन हो गया। माँ मेरी छाती पर ऐसे हाथ फेरने लगीं जैसे मुझे दिल का दौरा पड़ा है। भैया-भाभी मुझे सहारा देने दौड़े। मेरी स्थिति अजीब हो गई। मैंने कहा—"आप लोगों को क्या हो

गया है, मुझसे इस तरह क्यों व्यवहार कर रहे हैं ?" जवाब में सन्नाटा रहा। कमरा इस कदर शान्त हो गया कि सिर्फ मेरा प्रश्न उसमें गूँजता रहा। फिर मुझे जबरदस्ती एक आरामकुर्सी पर बिठा दिया गया। माँ मुझ पर पंखा झलने लगी। सब कुछ मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैंने फिर कुछ कहना चाहा तो भैया ने डाँट दिया। मैं चुप रहा। "चैन से जीना हराम है"—पिता जी ने कहा और बराण्डे से उठकर अन्दर चले गये। उस दिन उस घटना के बाद मैं बहुत रोया अपने-आप पर, अपने घर के सदस्यों पर और न जाने कब नींद लग गई। रात के किसी पहर मे नींद टूटी तो पिता जी की आवाज कानों में पड़ी। उन्होंने भैया से पूछा—"शहर में अच्छा साइकियाट्रिस्ट कौन है ?" पिता जी के इस प्रश्न की वजह से उस रात मैं बाकी समय सो न सका।

सुबह बिस्तर से उठा था तो सर पर सन्नाटा सवार था और शरीर मे एक भयावह झुरझुरी समाई हुई थी। फिर भी आदतन मैं निकल पड़ा। रंगी हुई दीवारों को देखा तो रात की घटना याद न रही। मैंने तुरन्त महसूस किया कि अब मैं पूरे उत्साह में फिर मे हूँ और घर की सारी बातें महत्वपूर्ण नहीं हैं। इस तरह कुछ दिन और गुजर गये। अब सुबह उठकर किसी स्फूर्ति का इन्तजार नही करना पडता। मैं स्वतः स्फूर्त हो जाता और लगभग किसी बच्चे के दौड़ते कदमों की तरह मेरा शरीर बाहर निकल आता। मैंने अपने शरीर मे एक तीव्र संचार को बहुत गहराई से अनुभव किया। मुझे वे सारी चीजें जो रसहीन लगती थी अपने-आप में जीवित परिवर्तन लिए हुए लगती। अचानक मेरा ध्यान शरीर पर गया। लगा कि अब कुछ बेहतरी है और बीमारी के दिन अब बहुत थोडे हैं। मुझे लगता एक ऐसी हवा चलने ही वाली है जो कूड़े के ढेरों से उठती बदबू को अपने साथ बहा ले जायेगी। फिर सब कुछ ठीक होगा और हम एक बेहतर हवा का उपयोग अपने फेफड़ों में करने लगेंगे। बहुत जल्द सूरज की गर्मी का इस्तेमाल अमल में किया जायेगा और इस तरह सुबह उठकर शुद्ध हवा की तलाश की मजबूरी जाती रहेगी। फिर उस वातावरण में जो बच्चे पैदा होंगे उन्हें कोई भी इम्तहान चुनौतीपूर्ण नहीं लगेगा। उन्हें जिस तरह की तालीम दी जायेगी उसमें मदरसे ही पर्याप्त नहीं होंगे।

इस तरह की हजारो-हजार कल्पनायें मेरे दिलो-दिमाग में उन दिनो चक्कर लगाया करती । उन कल्पनाओ के जो चित्र मेरी आंखो के आगे बनते उनके पीछे हमेशा मुझे दीवारो पर लिखी लाइनें नजर आती । मैं बहुत बेसब्र हो उठा था । उन दिनो कोई भी इन्तजारी का समय मेरे लिए चिड़चिड़ाहट होता । पर एक बात यह जरूर थी कि मैं हरदम खुद को ताजादम महसूसता ।

लेकिन बहुत दिन नही गुजरे होंगे । मैंने देखा मेरी कल्पनाओं के चेहरों पर कालिख पुत गई है । मैंने देखा दो फलांग की दूरी तक रंगी जा चुकी दीवारें एक ही रात मे एक फलांग रह गई हैं । एक फलांग दूरी तक की दीवारो को कोई फिर उनके पुराने रंग पर पहुँचा गया है । जब वह दीवारें रंगते हुए कई दिनो के बाद एक फलांग और बढा तो इधर दो फलांग दूरी तक की दीवारें अपनी पूर्वावस्था मे पहुँच चुकी थी । जितना काम वह एक हफ्ते मे करता उस काम को कोई एक अदद रात मे नष्ट कर जाता । वह मुझे रोज सुबह प्रकाश मे दिखता जो दीवारो पर नारे रंगता पर दीवारो को उनकी पुरानी रंगत पर पहुँचाने वाला उस प्रकाश मे कभी नही दिखा । मैं देख रहा था बल्कि कहीं बहुत गहरे अनुभव कर रहा था कि मेरी पूरी आस्था दीवारो पर लिखी हुई लाइनों पर हो चुकी है । इसलिए मुझे लगता दीवारों को सफेद और कोरी देखते हुए जीते रहना मुश्किल हो सकता है । मैं व्यक्त नही कर सकता कि इस घटना से मुझे कितनी वेदना हुई । वैसे भी मैं पहले ही से काफी कमजोर था । मुझ पर तो उसका ऐसा प्रभाव पड सकता था कि सामान्य रूप से मेरे शरीर मे होती उथल-पुथल एकदम हमेशा के लिए शान्त हो सकती थी । मेरे अन्दर बची-खुची मानवीय जिजीविषा ने मुझे शान्त न होने दिया । ये जो कुछ हुआ उसके पीछे कारण "वही" था जो सफेद होती जा रही दीवारो से बेखबर अपने काम मे लगातार लगा हुआ था । इस गुजर गये समय तक मैं उसकी गतिविधियों का निरीक्षण ही कर पाया । अचानक मुझे ख्याल आया कि क्या मैं किसी तरह भागीदार हो सकता हूँ । मैंने सोचा मेरा दायित्व ? मैंने अलग-अलग समयो मे दीवारो की निगरानी शुरू की । मुझे लगा और मैंने

, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

पाया भी। दीवारों को कोरेपन तक पहुँचाने वाली कुछ अमूर्त शक्तियाँ हैं जो दीवारों पर लिखी गई भाषा को समझने के बाद ही देखी जा सकती हैं। मैंने उन शक्तियों को देख लिया था। अकस्मात् मैं सोच गया कि कुछ लोगों को अपने से मिलाकर ऐसे काम को बलात् रोका जाय और उन अमूर्त शक्तियों का विरोध किया जाय। मैंने कई बार ऐसा सोचा और लगभग जुट जाने वाली स्थिति तक भी पहुँचा, पर अमल में लाने के पहले पिता जी का वह प्रश्न हमेशा मेरे अन्दर चीख उठता—"अपने शहर में अच्छा साइकियाट्रिस्ट कौन है ?" यहाँ आकर पसीना मुझे डुबो लेता और निराशा मुझे घेर लेती और इसके पहले कि मैं जमीन पर चक्कर खाकर गिर जाऊँ मैं खुद ही लेट जाता था। इसके बाद की स्थिति कुछ भी हो सकती थी। जैसे मैं सड़क से गुजरते हुए ट्रक के नीचे आ जाऊँ या किसी पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी से कूद पड़ूँ। पर नहीं मालूम क्यों वैसा हुआ नहीं।

ऐसे ही कितने दिन निकल गये। मेरी हवाखोरी की एक निश्चित सीमा थी जिसे वह कुछ दिनों में पार कर जायेगा यह मैं अच्छी तरह समझ रहा था। मैं लगभग खुद को भूलता जा रहा था। अब सिर्फ उसकी चिन्ता ही मुझे रहती। वह वक्त भी आया जब उसने मेरी सीमा को पार कर लिया। मैं काफी व्यग्र हो गया। उसके लिये कई बातें मेरे पास थीं जो मैं कर लेना चाहता था। मैं अनुभव कर रहा था, कि वह एक दिन में मुझे अपनी सीमा से दस गज आगे बढ़ा देता था। मैं किसी भी तरह अपने आपको संभालने में लगा था और ऐसी स्थिति में मुझे लगा अब इससे बात कर ही लेनी चाहिये ताकि इसे उन हालातों का ज्ञान हो सके जो बन रहीं है वहाँ, जहाँ से वह चला था। और एक दिन मैंने उससे कह ही दिया। उससे बात करने के पहले जो उत्तेजना मैंने महसूस की थी वह मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। वह ठीक उसी तरह की थी जब मैं बचपन में वेताल की वीरतापूर्ण कहानियाँ पढ़कर उत्तेजित हो जाया करता था। मैंने कहा—सुनिये !

दीवारों पर घूमता हुआ उसका हाथ रुका। वह पल्टा तो मैं घबराया। मुझे याद है मैं बड़ी मुश्किल से कह पाया था—"आपकी मेहनत बेकार जा

रही है, पीछे जाकर देखिये दीवारें अपनी पुरानी हालतो में पहुँच रही हैं। मेरे इतना कहने पर वह मुस्कराया। मुस्कराहट मे ऐसी कोई बात थी जिसने मुझे बुरी तरह डरा या, फिर उसने मुझसे कहा—"आप झूठ बोल रहे हैं।" फिर अपने काम मे लग गया।

मैंने उससे इस तरह के जवाब की आशा नही की थी। मेरी कल्पना मे यह था कि वह बदहवास होकर पीछे की ओर दौड़ने लगेगा। या उसे ऐसा कुछ हो जायेगा जिससे ज़ाहिर हो कि उस पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। पर वैसा कुछ भी नही हुआ था। वह पूरी ताकत से अपनी जगह पर खड़ा था और उसके हाथ उसी तरह से दीवारोंपर चल रहे थे जैसा पहले दिन मैंने देखा था। मिनट के किसी भाग मे मेरे दिमाग में आया कि यह पागल या मूर्ख तो नही है। फिर उसके प्रति मैंने अपनी कल्पना के विषय मे सोचा तो लगा कि मूर्खता तो वही होती कि वह प्रतिक्रिया मे पीछे दौड़ने लगता। वैसी हालत में भी मैं खुद पर जोर से हँसा। वह जिस तरह की हँसी थी उससे मुझे लगा कि मुझे अभी बहुत कुछ जानना है। जब संयत हुआ तो मैंने फिर उससे कहा—सुनिये......उसने बीच मे ही मेरी बात काटते हुए कहा—"मेरी समझ में नही आता कि आप लोग अफवाहें क्यो उड़ाते हैं? मेरे दुश्मन क्यो बनते हैं? मुझे अपना काम करने दीजिये।"

अब मेरे लिये स्थिति असह्य हो गई। मेरे अन्दर इतना भी दमखम नही रहा कि उसके फर्राट और विवेकशील आचरण के सामने रुक सकता। मैं आगे सोचने के काबिल भी नही रह गया और बिना एक पल गवाये वहाँ से भाग लिया।

दूसरे दिन निकला, तो ठीक से चलना मेरे लिये मुश्किल हो रहा था। कहीं एक आशा जरूर टिकी थी कि शायद उसने मेरी बात पर मेरे चले आने के बाद विचार किया हो। यही बात थी मैं घर से बाहर फिर निकल आया था। रास्ते मे चलते हुए मैं अपनी आशा के विपरीत नही सोच पा रहा था।

दीवारें सफेद होती गई थी वहाँ तक जहाँ तक मेरी सीमा थी। उससे भी आगे मैं निकल गया। मेरा दम भर गया था फिर भी मैं चल चल रहा था।

0, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

फेफड़े साँस को संभालने को तैयार नही थे। दूर-दूर तक न वह था न रंगी हुई दीवारें। मैं पसीने से लथपथ था। जिस जगह मैं खड़ा होकर देख रहा था वहीं खड़ा रह गया। मुझे लगा शरीर पर मेरा नियंत्रण खत्म हो रहा है। हिलने की कोशिश मेरा शरीर नही कर पाया। और मैं आँखों को धुंधलाते जानकर वही जमीन पर लेट गया। कुछ भी सोच पाने की ताकत अचानक चुक गई। पता नही कितनी देर मैं वहाँ लेटा रहा। जब शरीर ठन्डा हुआ तो उठ कर घर की ओर चल दिया।

रास्ते भर मैं ऐसी कोई भी बात नही देख पाया जो मेरे उत्साह को फिर से पैदा कर सकती। ये भ्रम था या कुछ और था, मैंने देखा आसमान और ज्यादा धूल भरा हो गया है। बड़े-बड़े पेड़ जो कभी हरे रहे होंगे सूख गये हैं। उनकी शाखाएं हवा के अस्तित्व को नकार रही थी। नंग-धड़ंग बच्चे सड़कों पर दौड़ रहे थे। मुझे लगा कि वे सिर्फ दौड़ रहे हैं। मैं समझ नही पाया कि वे मेल-खेल मे दौड़ रहे हैं क्योंकि उनके चेहरे पर हँसी नही थी न ही उनकी खिलखिलाती आवाज। चारों तरफ एक भयानक शान्ति थी। मैं मानसिक अवस्था के उस कटघरे में आ गया था, जो आदमी को विक्षिप्त या आत्मघाती बना देती है।

लगातार इतने दिनों से जिस दुनिया का ढाँचा मेरे दिमाग में बन रहा था, वह अब नही था। एक कालापन निरन्तर बन रहा था। मैंने अपना जायजा लिया तो लगा समझ कहती है कालापन दूर नही होगा। लोग हमेशा इसी तरह बीमार रहेंगे क्योंकि सिर्फ चलता-फिरता शरीर ही स्वास्थ्य की पहचान नही है। आगे अब कभी भी लूले-लंगड़े बच्चे ही पैदा होंगे। स्वास्थ्य वह चीज है जिस पर अधिकार रखने वालों को उँगलियो पर गिना जा सकता है।

घर पहुँचकर मैं मुर्दे की तरह हो गया। मुझे उस हालत में देखकर घर के लोगों का व्यवहार अच्छा हो गया। मुझे बेहद आश्चर्य हुआ। कई दिन गुजर गये तो मुझे उस तरह का भोजन दिया जाने लगा जो घर के सभी लोग

खाते थे। किसी भी तरह के परहेज की जरूरत अचानक खत्म हो गई। मैंने देखा पिताजी का व्यवहार काफी बदला हुआ है। पहले की तरह चिन्तित निगाहें वे अब मुझ पर नही डालते बल्कि अब निगाहो में दुलार दिखाई देता। यह स्थिति मेरे लिये अजीबो-गरीब थी। मैंने कई बार सुना वे बड़े भैया से पूछते—"क्यों, सुधीर अब काफी अच्छा हो रहा है।" उन्हे देखते हुए लगता वे भैइया से नकारात्मक उत्तर की आशा नही करते।

मैंने खुद से कई बार पूछा—"क्या पिताजी जो कहते है, ठीक है ?" उत्तर मेरे पास नहीं था, न कोशिशो के बाद मिला ही। डॉक्टर ने फिर से मेरी रिपोर्ट बनाई जिसमे लिखा था "नॉर्मल।"

उसके बाद घर मे मेरे लिये इतनी स्वतन्त्रता थी कि अब मैं उस समय तक हवाखोरी कर सकता था जब तक कि मुझे भूख और नीद न लगे। इतनी स्वतन्त्रता के बाद भी मैं घर मे रहा करता। मुझे लगता कि क्या मैं ही अकेला ऐसी स्थिति मे हूँ या दुनिया में मेरी तरह के और भी लोग हैं जो इस हालत मे है। मेरे कुछ साथी जिन्हे मैं खास समयो में मिला था, कहते थे ऐसा है। तुम्हारे जैसे बहुत से लोगो से हमारा परिचय है। हालाकि उनका इस तरह कहना मेरे लिये सिर्फ एक संभावना थी, और संभावना से इन्कार भी नही था। बस था यही कि एक अच्छे और विवेकपूर्ण ढंग से सोचने की मेरी शक्ति नष्ट हो चुकी थी। फिर भी मैं लगातार सोचता जरूर था। मुझे लगता इस तरह सोचते रहने से शायद कुछ राह निकल पडे। निरन्तर सोचते रहना मेरी आदत थी जो बरकरार थी। हाँ, अब मैं ठंडी हवाओ और साफ आसमान की कल्पना नहीं कर पाता था। और इसी वजह से लगता कि मेरे अन्दर किसी भी सामान्य आदमी के गुण नही हैं। इसके कई कारण थे जैसे यदि कोई मजमा घर के बाहर सडक पर कोई मदारी लगाता तो मैं उसे आम लोगों की तरह देखने घर से दौडकर बाहर नही निकल पडता। जब कि सारा मुहल्ला मदारी के इर्द-गिर्द हो जाता था। मैंने दर्जनों बार प्रयास किया कि वे सारे गुण मैं अपने अन्दर ले आऊँ जो सामान्य कहलायें और जो सब लोगों मे हो। पर मैं

वैसा नही कर पाता। यह एक मजबूत विवशता थी, जिसके अन्दर मैं दबोच लिया गया था।

इन सारी अ-सामान्यताओ के बावजूद घर के लोग मुझे सामान्य मानने पर उतारू थे। मैं अपनी भावनाओ और विचारो को किसी गुप्त रोग की तरह छुपाये रखता था। मुझे लगता कि मैं बहुत घृणास्पद स्थिति में पहुँच गया हूँ क्योंकि मुझे मालूम था कि किसी भी गुप्तरोग के मरीज से कोई डॉक्टर ही सहानुभूति रख सकता है।

एक बहुत लम्बा समय मैंने घर में रहते-रहते काट दिया था। बाहर निकलने की अनिच्छा ज्यादा दिन तक नही रहेगी ऐसा लगातार महसूस होता रहता था। मुझे सिर्फ उसी इच्छा का इन्तजार रहता। कुछ बात थी जो घोर निराशाओ के बावजूद मुझे तैयार कर रही थी कि मैं बाहर निकलूं। शायद दिनो-दिन बढती मेरी बीमारी ही। मैंने सोचा मैं निकलूंगा जरूर, शायद उस दिन का इन्तजार था कि मैं इस हद तक बीमार पड़ूं कि हवा-खोरी की जरूरत हो जाय। एक दिन वैसा हुआ। मैं निकला, मैं चाहता था कि आसमान को देखूँ, पेडो को देखूँ, हवा को महसूसूँ, पर हिम्मत नही पडी। पर दो कदम आगे बढ़ते ही मुझे रंगी हुई दीवारें दिखी, मैं अपनी जगह पर उछल पड़ा। मुझे लगा मैं कोई ५-६ साल का बच्चा हूँ, और फुदकते रहना मेरी आदत है। मैंने उसे भी देखा जो दीवारो को रंग रहा था। वह, वह था, जो पहले था, बल्कि उससे मिलता-जुलता ही कोई और था। मेरी खुशी ने मुझे अपने आप मे डुबो लिया। मैं घर की तरफ तेजी से दौडा, मुझे याद है तब से अब तक दीवारें हजारों बार रंगी जा चुकी हैं और रंगने वाला हर पहला व्यक्ति दुबारा नही दिखा है। लिखते हुए वह आगे ही—आगे बढ़ता गया है।

मुझे याद नही उस दिन मैं कितनी देर तक दौड़ता रहा, और जब घर पहुँचा था तो मुझे साँसो के थमने का इन्तजार नही करना पड़ा था।

□□

आत्ममुग्ध

तफरीह का मूड हो ऐसा भी नही था, वस नौकरियो मे नही गए थे । जाते जरूर पर उस दिन सरकारी तौर पर छुट्टी थी । ऑफिस मे कुछ नया होग इसकी आशा भी उन लोगो को नही थी । रोजमर्रा का काम निपटाने जाना व यही कुछ तो । वे दोनो यह भी जानते थे कि शहर मे कुछ नया नही है, किसी हद तक उन्हे यह भी अन्दाज था कि देश मे भी कुछ नया नही है । डिएगो-गार्सिया या न्यूट्रॉन बम भी उन्होने अखबार के जरिये जान लिया था । वैसे इस मामले मे वे दोनो अनुभवहीन थे । बचपन से वे इस आजाद कहे जाने वाले देश मे समय काट रहे थे और इसलिए वे समझते थे कि वे आजाद है । पूरी दुनिया की तमाम जानकारियां उन्हे थी और अन्दर व बाहर से वे मानते थे कि वे उतनी ही हैं जितनी उन्हे ज्ञात है । एक खास बात और थी कि वे अपने शहर से बाहर कही, याद नही कभी गए थे । ऐसी जरूरत महसूस हुई हो इसके बारे मे भी ठीक-ठीक वे नही बता सकते थे ।

बहुत दिनो पहले वे फूहड हरकतें किया करते थे और हंस लिया करते थे, जिमसे उन्हें लगता था कि वे आदमी के व्यवहार मे तब्दीलियां कर रहे है ।

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

फिर बाद में वे हरकतें भी बेमानी होने लगी, तो वे शान्त रहने लगे। इस आदत की वजह से ढेर सारे व्यंग्य उन्हें सुनने पड़े। लोग उन्हें बुद्धिजीवी या और कुछ कहने लगे, क्योंकि लोगो के हिसाब से चुप रहना नही चाहिए और फिजूल की बातो से अचानक उनका सरोकार मुश्किल हो गया था। जीवन के कुछ अर्थ अपने तईं उन लोगो ने निकाल लिए थे, पर सब बातें उन्हे समझ मे नही आती थी कि ठीक-ठीक करना क्या चाहिए। इन्ही गफलतो की वजह से दोनो ने लोगो से मिलना-जुलना बन्द कर दिया और लम्बे अन्तराल के बाद दोनों ने मिलकर यह तय कर लिया कि ऑफिस में हर वक्त काम करते हुए व्यस्त रहना है। इस निर्णय को उन लोगों ने व्यावहारिक अजाम भी दे डाला, इस तरह सरकारी दिनो मे तो उनका वक्त कट जाता था। समस्या उनके सामने थी सरकारी तौर से घोषित छुट्टियो को काटने की। चूंकि दुनिया के और जरूरी काम उन लोगों के सामने नही थे, इसलिए उन लोगो ने तय किया फिल्मे देखने का सिलसिला। आज उस सिलसिले का पहला दिन था।

दोनों भोजन करके बाहर निकले थे। सूरज एकदम उनके सिरो के ऊपर था। शायद दिन के बारह बज रहे थे। पूर्व निश्चित था कि बारह वाला शो नहीं देखना है। बिना किसी संवाद के वे दोनों अपनी-अपनी साइकिलों पर चढ़ गए। थोडी देर बाद उनकी साइकिलें शहर से बाहर जाने वाली सड़क की तरफ जा रही थी। करीब दस किलोमीटर चलने के बाद वे शहर के उस हिस्से मे आ गए जहाँ शहर को छोडने वालो के लिए "धन्यवाद" लिखा था। वे यहाँ महीने मे कई बार आते थे पर जान-बूझकर उस बोर्ड की तरफ नही देखते थे। या कभी-कभार हसरत भरी निगाहो से देख लेते थे। बोर्ड से थोड़ा पहले वे दोनों रुक गए। एक ने जो ठिगना था कहा, "आऊट-स्कर्ट"। फिर वे दोनों जोर से हंसे।

ऊँचे ने ठिगने की दूसरी हंसने वाली बात बताई।

"तुमने देखा था?"

"क्या ?"

"रास्ते में"

"रास्ते में क्या ?"

"अरे जहाँ बेदीनगर खत्म होता है, वहाँ पर एक बोर्ड पर लिखा था—"देर हो अंधेर का कारण है ।" "चूतियापे का उपदेश है ।" ठिगने ने कहा । लेकिन दो फर्लांग आगे जाकर ही तो एक बोर्ड पर यह लिखा था कि—दुर्घटना से देर भली । ऊँचे ने फिर कहा । दोनों एक खुलकर हँसे । ठिगना कहने लगा, "यार, इन दोनों में सत्य क्या है ?" "एनर्जी ।" ऊँचे का जवाब था । "बहस में कहाँ जा रहे हो, पहले यह तो सोचो कि इन सब बातों से अपना कोई नाता है ?" "हाँ यार समझ गया अपना कोई नाता नहीं है इनसे," ठिगने ने कहा । ऊँचे के चेहरों पर इस दरम्यान दार्शनिकता के कई भाव आए और चले गए । फिर उसके मुँह से निकला, "जो चीज हंसने की है उस पर बहस नहीं करना चाहिए ।"

"हाँ भाई समझ गया," ठिगने ने हामी भरी, फिर संवाद विहीनता दोनों के बीच आ गई । फिर वे चुपचाप सड़क के किनारे एक होटल के अन्दर दाखिल हो गए । होटल में भीड़-भाड़ नहीं थी, अभ्यस्त कदमों से चलते हुए वे किनारे वाली एक टेबिल पर बैठ गए ।

"कृपया फालतू न बैठें" ठिगने ने एक बोर्ड को पढ़ते हुए कहा । ऊँचा उसका आशय समझ गया । उसने जल्दी से घड़ी देखी । एक बजा था । उसने कहा—"अभी तो एक बजा है, और किसने कहा कि हम फालतू बैठेंगे ।" फिर एक लड़के को बुलाकर चाय का आँर्डर दे डाला । चाय आ गई तो ऊँचा बुद-बुदाते हुए कहने लगा । "धीरे चलो," "देर मत करो," "फालतू मत बैठो" "अजीब झंझावात है ।" इस पर ठिगना मुस्कराया, जैसे इन मूर्खताओं को वह अच्छी तरह समझता है । उसने फुसफुसाहट में कहा, "सब बेवकूफियाँ है । उसी वक्त सड़क पर एक तेज चलते हुए ट्रक ने प्रेशर-हॉर्न बजाते हुए ब्रेक लगाए । हॉर्न और ब्रेक से उत्पन्न हुई आवाज इतनी तीव्र थी कि एक क्षण-को लगा जैसे

कान के पर्दे फट जायेंगे । "हाइवे," ऊँचे ने कहा । "स्पीड, चालीस किलोमीटर," ठिगना बोला । दोनों मुस्कुराए । सड़क पर भीड़ जमा होने लगी थी, शायद कोई मवेशी ट्रक के नीचे आ गया था । होटल में बैठे तमाम लोग तेजी से बाहर की ओर लपक लिए थे । उन दोनों पर अन्य लोगों जैसी प्रतिक्रिया नहीं हुई थी । ऐसा इसलिए भी था कि उनकी अपनी कुछ विशेष धारणाएँ थीं जिनके तहत वे कह सकते थे कि वे दोनों दुर्घटना के कारणों को जानते हैं ।

ऊँचे ने दोनों के बीच आया मौन तोड़ा, "बाहर सड़क पर लोग क्या कर रहे हैं ?

"सिर्फ उत्सुकता का ठीक-ठीक अभिनय और कुछ नहीं," ठिगने का जवाब था ।

ऊँचे को लगा कि शायद ठिगना कहीं से खीज गया है और यह बात उसकी सेहत के लिए कतई अच्छी नहीं है । इसलिए उसने बात को महत्व न देने का दिखावा करते हुए कहा, "अपन तो चाय पी रहे हैं न ?"

इस वाक्य के बाद दोनों ने मुस्कुराने और खिलखिलाने के बीच की क्रिया की, और चाय का आखिरी घूँट भरा । फिर शान्त हो गए । इतने में ठिगना बाहर जाकर सिगरेट ले आया और एक सिगरेट ऊँचे को भी थमा दी ।

"सिगरेट स्मोकिंग इज इन्ज्यूरियस टू हेल्थ," ऊँचा बुदबुदाया । "फिर भी बिक रही है," ठिगने की आवाज थी । "वैधानिक चेतावनी का क्या अर्थ होता है ?" कुछ सोचते हुए ऊँचे ने पूछा । "हड़ताल विरोधी अध्यादेश" ठिगने ने जवाब दिया । "ऊँह ! मैं सिगरेट के संदर्भ में पूछ रहा था" ऊँचा थोड़ा सा खीझा । "संदर्भ कोई भी हो मतलब एक है," ठिगने ने कहा । "यार मैं गम्भीरता से बोल रहा हूँ" ऊँचे ने स्पष्टीकरण दिया । "क्यों मजाक करते हो ।" ठिगने ने कहा । दोनों फिर जोर से हंसे । एक मिनट की शान्ति के बाद दोनों उठकर बाहर चल दिए । शायद दो बज रहा था । वे दोनों फिर शहर की ओर जा रहे थे । दस-ग्यारह किलोमीटर का रास्ता उन्हें फिर तय करना था । छुट्टी की

वजह से सड़क पर रोज जैसी चहल-पहल नहीं थी। यूं लगता था, जैसे छुट्टी के गम में लोग उदास हैं और सुस्ती का प्रकोप उन पर छाया हुआ है।

तीन बजते-बजते वे लोग नियत टॉकीज में पहुँच गए थे। सड़क वाली उदासी वहाँ से दूर थी। उसके विपरीत वहाँ लोग किलकारियाँ मार रहे थे। औरतें सजी-सजाई और मर्द पूरी सफाई के साथ अच्छे कपड़े पहने हुए प्रसन्नचित्त नजर आ रहे थे।

फिल्में देखने का सिलसिला लम्बे अर्से तक चलने वाला था, इसलिए किसी किस्म की औपचारिकता उन दोनों के मध्य नहीं थी। न ही वे इस बखेड़े में पड़ना चाहते थे। इसी वजह से दोनों ने मन्त्रवत अपनी-अपनी जेबों में हाथ डालकर अपनी-अपनी टिकिट के पैसे निकाल लिए। ऊँचे ने चारों ओर देखते हुए और थोड़ा परेशान होते हुए कहा, "यार यह तो जरा ऊँची फिल्म है न, फिर इसमें इतनी भीड़ क्यों है ? उसे अचानक शंका हो गई कि लोग इस तरह की फिल्में भी देखने लगे हैं, और इसलिए वह उदास हो चला था। ठिगने से जवाब न मिलने पर फिर उसने पूछा—"क्यों ये वही फिल्म है न जिसमें एक आदिवासी के साथ अन्याय होता है और उसकी बीबी के साथ बलात्कार भी ?"

"हाँ" ठिगने ने जवाब दिया। फिर उसकी उदासी की तरफ ध्यान दिए बिना बोला, "तुम तो असम्भव बातें सोचने लगते हो। असल में बात यह है कि आज ही शहर की दूसरी टॉकिजों में कुछ बड़े मशहूर अभिनेताओं की फिल्में लगी हैं जिनमें लोगों को टिकिटें न मिली होंगी, और वे लोग इस फिल्म को भी मनोरंजन की आशा से देखने चले आए होंगे। वर्ना ये लोग ऐसी फिल्मों को तरजीह नहीं देते।"

ठिगने ने इन बातों को कुछ ऐसे प्रभावशाली ढंग से कहा कि ऊँचे को आश्वस्त होने में देर न लगी। वह प्रसन्नता की ओर वापिस आने लगा। इसी दौरान ठिगना बढ़ा और जाकर टिकिटें ले आया। लौटकर उसने ऊँचे से कहा, "चलो।" और दोनों रिजर्व क्लास की ओर बढ़ गए।

टॉकीज के अन्दर का माहौल भी दुरूह था। सीटो के लिए लड़ाई जारी थी। हॉल की मद्धिम रोशनी का नाजायज फायदा उठाते हुए लोग भी गौर करने पर देखे जा सकते थे। किसी तरह टटोलते-टटोलते और "सॉरी-सॉरी" कहते हुए वे दोनों अपनी सीटो पर जा बैठे और तब जाकर दोनो ने राहत को महसूस किया। ठिगने ने अपना रूमाल निकाल कर पसीना पोछा और कहा, "आज टॉकीज का मालिक बहुत खुश होगा।" "नई बात बताओ वह तो हमेशा खुश रहता है।" ऊँचे ने कहा। "पर आज अधिक खुश होगा।" ठिगना बोला। "क्यो ?" ऊँचे ने प्रश्न किया। "क्योकि आज हाऊसफुल तो दर किनार एक्स्ट्रा सीटें लगी हैं," ठिगने ने जवाब दिया।

"हाँ वह तो बिजनेसमेन है उसे क्या मतलब, लोग फिल्म को समझें न समझें।" ऊँचा कहता गया। उसने आगे कहा—"लोग कितने बेवकूफ हैं, जो चीजों को समझते नही। इस देश मे लोग कभी बुद्धिमान नही हो सकते। ऐसी निरक्षरता हमेशा व्याप्त रहने वाली है आदि-आदि। यह सब कहने के दौरान, और चेहरे पर दुःख के भाव आने के बावजूद वह अन्दर से कही खुश था। फिर बातचीत करते-करते पता नही कब फिल्म शुरू हो गई और खत्म होने तक दोनो के बीच कोई बात नही हुई। जब वे दोनो फिल्म देखकर बाहर निकले तो बहुत खुश थे। जबकि दूसरे लोग रोआंसी सूरत लेकर बाहर आए थे और निर्माता निर्देशक को गालियाँ दे रहे थे। फिल्म की तकनीकी खूबियों की प्रशंसा करते हुए ठिगने ने फिल्म को बहुत महत्वपूर्ण बताया और ऊँचे से पूछा, "तुम्हे उस वकील का अभिनय कैसा लगा ?" "बहुत अच्छा, पर वह मध्यवर्गीय चरित्र था" ऊँचे ने जवाब दिया। इस पर ठिगने ने एक आह भरी और अन्दरूनी चिढ़ सहित बड़-बड़ाया—"ये साला मध्यवर्ग।" प्रतिक्रिया में ऊँचा मुस्कुराता रहा, शाम गहराती जा रही थी। वे दोनो सड़क पर आ गए थे। अचानक ठिगने ने प्रश्न किया, "पहले सीन का अर्थ समझते थे ?" हाँ "उसका यही मतलब था कि एक जवान आदमी किस तरह संघर्ष करता है और उसके विपरीत एक वृद्ध और चालाक आदमी किस तरह संघर्ष से कतराकर गुजर जाता है," ऊँचे ने उत्तर दिया। "बिल्कुल ठीक समझा तुमने। आखिर

समझदार आदमी के दोस्त हो न", "ठिगने से व्यंग्य से कहा। ऊँचा कुछ तिलमिलाया।" यहां दोस्ती का असर नहीं है यहां मेरी साफ और संवेदनात्मक दृष्टि है और इसमें मेरे अच्छे संस्कार भी काम में आते है। "भारी शब्दों का इस्तेमाल मत कर भाई। मैंने तो मजाक किया था," ठिगने ने कहा। दोनों फिर हंसे और ऊँचे की तिलमिलाहट तरल हो गई।

"यार इस फिल्म में एक खास बात देखी तुमने?" ठिगने प्रश्न किया। "क्या?" ऊँचे ने पूछा। "यही कि फिल्म में एक मार्क्सवादी के प्रति सिम्पैथी बनती है," ठिगना बोला। ऊँचा हंसा, भूल गए तुम, किसी के प्रति सिम्पैथी रखना एक "टिपीकल पेटी-बुर्जुआ एटीट्यूड" है, फिल्म में वही मार्क्सवादी कहता है।

ठिगना चौंका, "हाँ यार, यह तो मैं भूल ही गया था, इसका मतलब तो यह हुआ कि फिल्म में दिखाया गया यह दृष्टिकोण जिसमे उस आदिवासी के प्रति दर्शक की सहानुभूति बनती है, भी बुर्जुआ दृष्टिकोण हो गया।"

"यस माई डियर।" ऊँचा गौरवान्वित होते हुए बोला, "अब तुम्हें अपने दिमाग को थोड़ा दुरुस्त करा लेना चाहिए।" यह कहते हुए ऊँचे के चेहरे पर कुटिल अहंकार छाने लगा।

काफी देर की शान्ति के बाद ठिगने ने फिर मौन तोड़ा और ऊँचे से प्रश्न किया—"क्या तुम्हें फिल्म देखने के बाद बहुत गुस्सा आया उन सबको पर, जो आदिवासियों पर इस तरह अत्याचार करते है?" ऊँचा थोड़ी देर तक तो सोचता रहा। फिर एक व्यंग्यात्मक मुस्कान उसके चेहरे पर तेजी से उभरी और उसने कहा, "गुस्सा आने का प्रश्न इसलिए नहीं उठता क्योंकि वे सब फिल्म में घट रही घटनाएँ थी, और मैंने फिल्म को कहीं भी भावुकता में नहीं लिया है, मैं सारी फिल्म को यानि एक-एक दृश्य को गहराई से समझता रहा हूँ और इसी का परिणाम है कि मैं कह सकता हूँ कि यह एक अच्छी फिल्म है।"

ठिगने ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। फिर ऊँचे ने उससे पूछा, "तुम्हें फिल्म पसंद आई कि नहीं ?" "बहुत पसंद आई," ठिगने ने जवाब दिया। ऊँचा इतने छोटे से उत्तर में संतुष्ट नहीं हुआ। उसने बात आगे बढ़ाई ताकि ठिगना उसमें हिस्सा ले, "लेकिन अफसोस यह है कि लोग समझते नहीं कि फिल्म क्या कहना चाहती थी।"

"हाँ यार", ठिगना बोला। "यही तो इस देश का दुर्भाग्य है। नहीं तो जैसे वह वकील जो आदिवासी की पैरवी करता है और अंत में उसके संघर्ष में शामिल हो जाता है, वैसे ही लोग भी निम्न तबकों के संघर्ष से जुड़ने लगें।"

"वकील मध्यवर्ग का था यह क्यों भूलते हो" ऊँचे ने प्रतिक्रिया व्यक्त की। "फिर अपना भी तो···"ठिगना बोलते-बोलते रुक गया। फिर दोनों ने चारों ओर ध्यान से देखा। सड़क पर दूर-दूर तक कोई नहीं था, उन दोनों ने राहत की सांस ली, और एक चाय की दुकान की तरफ बढ़ गए।

□□

विसंगति

दिग्विजय उम्र मे मुझसे बड़ा था और जमाने में चलने लायक भी। इसलिए बनी-बनाई परिस्थितियो ने उसे एक जिम्मेदार अधिकारी बना दिया था। बहुत पहले जब उसे शान से जीने की यह सुविधा हासिल नहीं हुई थी, मैं उसके लिए रोज मिलने लायक आदमी था और किसी हद तक काम का भी। अब जिस तरह मैं सोच पाता हूँ, वह दोस्ती तो नहीं थी। बड़े आदमी का बेटा होने की वजह से, उन दिनो उसके पास घूमने-फिरने और खेलने-खाने जैसी बातें हुआ करती थी। जिन्हें अन्जाम देने के लिए वह मेरी भरपूर मदद लेता था। मेरा घरेलू ढाँचा आर्थिक तंगियो की वजह से जर्जर था, जिसका लगातार असर मुझ पर पड़ता रहता था। इस वजह से मैंने घर से गायब रहने की आदत बना ली थी और किसी भी तरह की चिन्ता मे फँसकर बैठने से बेहतर मैं दिग्विजय के साथ रहना पसंद करता था। उसके साथ-साथ लोग मेरा भी आदर करते। मैं शायद इसी कारण अभिभूत रहता। हम दोनों मे मनमुटाव भी कभी नहीं हुआ। इसका एक कारण यह था कि मैं उसकी हर चीज को श्रेष्ठ मानता। हालांकि अब ये बात समझ में आई है कि

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

असल में लोग और कर भी क्या सकते हैं, जबकि सीधे-सीधे टकराहट के मौके उसकी अपनी-अपनी मजबूरियाँ नही देती। शायद बहुत धीरे-धीरे कहीं-न-कहीं यह मुहिम जारी रहती है कि लोगों के हिस्से में केवल लाचारी आए।

तब मैं बेरोजगार था। अक्सर क्या लगभग रोज ही ऐसे कार्यक्रम बनते कि दिग्विजय से मुलाकात होती रहती। फिर जब वह नौकरी में लगा तो कभी-कभार मुलाकात हो पाती। मेरे साथ उसके व्यवहार में कोई तब्दीली मुझे नही दिखती। ज्यादा मिलने का वक्त उसे उसकी नौकरी नही दे पाती यह सोचकर हमारे बीच आई इस नई परिस्थिति को मैं स्वीकार करता था।

अभी कुछ दिन पहले वह फिर मिला था। इस नई स्थिति के जन्म लेने के बाद वह जब भी मिलता तो हाल-चाल पूछते हुए गहरी सहानुभूति दिखाता। एक अस्वाभाविक संकोच से कहता—अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें अपने यहाँ क्लर्की में तो लगा ही सकता हूँ। पर मैं हर बार अन्यमनस्कता में फँस कर चुप्पी साध लेता। इस बार मिलने के बाद जब उसने इस बात को फिर से दोहराया तो मैंने उसे स्वीकृति दे दी। इतने दिनों की ऊब, खीझ और तंगी से छुटकारा मुझे जरूरी लगने लगा था और फिर घर मे जरूरतें इतनी बढ़ गई थी कि घर वाले मुझे धेले का नही समझते थे।

आखिरी बार मैं उससे रात मे मिला। मिलते ही उसने कहा—"तुम कल आफिस आ जाओ, मैंने सारा ताम-झाम जमा लिया है, तुम्हारी नौकरी पक्की।"

उस समय मेरे अंदर खुशी की तीव्र हलचल हुई। मैंने तुरंत फैसला किया कि कल मैं जरूर जाऊँगा। मेरे हाँ कहने के तुरन्त बाद हमारे बीच एक व्यक्ति और आ गया जिसने बहुत आदर से दिग्विजय को नमस्कार किया।

दिग्विजय ने मुझे उससे मिलाया—ये हैं रामनारायण, हमारे यहाँ बड़े बाबू हैं और मेरे बड़े भाई के समान हैं।

यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ, पर मैंने बलात् उसे हटा दिया। ऐसा मैंने यह सोचकर किया कि जब बिना कुछ हुए मैं दिग्विजय से सम्बन्धित हूँ, दूसरा भी हो सकता है। यह सच है कि दिग्विजय ने उस समय तक यह महसूस नहीं दिया था कि उसकी आत्मीयता विश्वसनीय नहीं है। अचानक उसने रामनारायण से पूछा—क्यों शहर में क्या स्थिति है ?

"सभी तरफ ड्राई है, कहीं बैठकर लेने तक की सख्त मनाही है।"

दिग्विजय ने फिर पूछा—"वो" ले तो आये हो न ?

हाँ !—रामनारायण ने जवाब दिया।

थोड़ी देर तक दिग्विजय कुछ सोचता रहा, फिर रामनारायण से उसने कहा—"फिर तुम्हारे घर ही चलते हैं, क्या कहते हो ?"

"कोई हर्ज नहीं है।" रामनारायण ने तत्परता से जवाब दिया।

इन कोड किस्म की बातों को समझ लेने के बाद मुझे लगा इनका साथ फिलहाल छोड़ देना चाहिये। मैंने तुरन्त दिग्विजय से कहा—तो मैं चलता हूँ।

उसने मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—नहीं, तुम कहाँ जाओगे, साथ चलो।

मैंने संकोच से कहा—नहीं आप लोगों को बिना वजह डिस्टर्ब ही करूँगा मैं।

इसके पहले कि दिग्विजय कुछ कहता, रामनारायण ने तत्परता दिखाई—"नहीं-नहीं ऐसा कैसे हो सकता है, आप भी चलिए।" जब से दिग्विजय की नौकरी लगी थी मुझे न जाने क्यों उसके साथ पीने में संकोच होता था। शायद मुझमें यह संकोच और दबाव पैदा हो गया था कि नहीं जब मैं कुछ कमाता नहीं तो मुझे पीने की लत नहीं लगानी चाहिये। इसलिए मैंने दिग्विजय से इसके पहले भी कई बार कहा था कि मैंने पीना छोड़ दिया है और उसने मेरी बात पर विश्वास करते हुए आफर करना बन्द कर दिया था। इसीलिए मैंने रामरानायण से फिर कहा—"मैं तो लेता नहीं, आप लोगों को ठीक नहीं लगेगा।"

मेरे बार-बार मना करने पर भी जब वे नही माने तो मुझे जाना ही पड़ा।

हम लोग शहर से हटकर अभी-अभी बसी एक सुन्दर सी कॉलोनी में पहुँचे। दिग्विजय ने मुझे बताया कि इस कालोनी में ज्यादातर उसके विभाग के लोगों ने मकान बनाए हैं, क्योंकि दफ्तर यहाँ से पास पडते हैं। जिस घर के सामने हम लोग जाकर रुके, मैंने कल्पना भी नही की थी कि वह रामनारायण जैसे बाबू का मकान हो सकता है। जब रामनारायण ने खुद बताया कि यह उसका मकान है तब मुझे मानना पड़ा। मकान एकदम आधुनिक किस्म का, सीमेंट कांक्रीट का बना था। शायद ऐसे मकान की डिजाईन बनाने के ही काफी पैसे खर्च होते हैं। गौरव के साथ दिग्विजय ने बताया कि यह उसकी बनाई हुई डिजाईन है। इतने बड़े और अच्छे मकान का इस बाबू के पास होने के आश्चर्य को भी मैंने टाल दिया यह सोचकर कि उसके पास पुश्तैनी पैसा होगा।

मकान मे दाखिल होते ही हम लोगों के सामने एक सजा-सजाया कमरा था। वहाँ एक वृद्ध बैठे थे। लगभग मेरे पिता की उम्र के। उन्होने हम लोगों का स्वागत करते हुए खास तौर से दिग्विजय का अभिवादन किया। फिर जिसे उन्होंने आवाज लगाई वह अठारह-उन्नीस साल का लड़का जिसका नाम दिनेश था तेजी से कमरे में आया और उसने हम सभी का मुस्कुरा कर स्वागत किया। रामनारायण ने बताया कि यह उसका लड़का है, और सामने बैठे हुए वृद्ध पिता। उसने आगे उनका परिचय देते हुए बताया कि वे पी० डब्लू० डी० में क्लर्क थे और कुछ वर्षों पूर्व रिटायर हुए हैं। कुछ देर तक बहुत औपचारिक बातें होती रही। मैं उस दरम्यान चुप रहा और टटोलता रहा कि रामनारायण के घर में और क्या-क्या है। अपने आश्चर्य को टालने के बाद भी मैं उससे मुक्त नही हुआ। रामनारायण ने जब कहा कि उसके पिता पी० डब्लू० डी० मे एक छोटे से पद पर थे तो मेरा वह भ्रम टूट गया था कि उन लोगों के पास पुश्तैनी पैसा होगा। और ऐसा होते ही अचानक मुझे लगा कि कल को यदि मैं

नौकरी में लगा तो मेरे पास भी एक ऐसा मकान होगा। मैं भी अच्छे दिन देखूंगा और तमाम वो चीजें मेरे पास होंगी जिनको दूसरों के पास देखकर आश्चर्य होता है कि ये जरूरी है। फिर एक बार दिमाग में प्रश्न उठा कि आखिर कैसे रामनारायण के पास इतना पैसा आया। इतना तो मुझे मालूम ही था कि बाबुओं को काम चलाने लायक पैसे भी नहीं मिलते। सोचते हुए सामने चल रही हरकतों पर मैं ध्यान नहीं दे पाया। पता नहीं कब उस लड़के ने कुछ नमकीन, बॉयल्ड अंडे और गिलास लाकर रख दिये। पास ही एक बड़ी बोतल रखी थी।

दो मिनिट बाद रामनारायण ने उस लड़के से कहा—दिनेश पैग बनाओ।

दिनेश ने जैसे ही यह सुना और जिस अंदाज से उसने अपने पिता की ओर देखा, जरा सी देर को लगा जैसे वह नाराज हो गया है। इसलिए पिता की आज्ञा मानने में उसने देर लगाई। जब दोबारा रामनारायण ने अपनी बात कही तब उसने कुछ सहमते हुए गिलासों को भरना शुरू किया। पाँचेक मिनिट बाद उसका चेहरा फिर सहज दिखने लगा। दिनेश के इस अंदाज को मैंने ध्यान से देखा। मुझे लगा उसे इस वातावरण में कुछ परेशानी महसूस हो रही है, भले ही वह थोड़ी देर तक रही।

रामनारायण के पिता दिग्विजय से बेटा-बेटा कहकर बातें कर रहे थे। दिनेश, उनका पोता उनके पास ही बैठा था। सब लोगों ने पीना शुरू कर दिया था। तीन पीढ़ियों को साथ बैठकर पीते मैंने कभी नहीं देखा था। मैं जिस समाज का आदमी हूँ, उसके अनुसार ये मेरे लिए गले के नीचे उतरने वाली बात नहीं थी। रामनारायण जिस समाज का आदमी था, उसमें मेरी दूरी हो नहीं सकती थी। मैं अन्दर से आश्चर्य से भर गया था। ऊपर इसलिए भी नहीं आ पा रहा था कि वे लोग बिल्कुल सहज थे। वह सहजता इतनी वास्तविक लग रही थी कि मुश्किल से भी नहीं कहा जा सकता था कि वे लोग अभिनय कर रहे हैं। चूंकि मैंने अपनी उम्र में ऐसा समागम नहीं देखा था, इसलिए मेरा दिमाग बड़ी तेजी से दौड़ने लगा था पर वह कहीं से

भी वह बात लेकर नहीं आ सका, जिससे मैं सोच पाता कि नही ये आधुनिकता है और उसमें सब चलता है। कारणों को जान लेने की मेरी इच्छा तेज़ हो गई। सर्वथा अजनबी अनुभव में मैं फँस गया था। अभी थोड़ी देर पहले जो भाव मैंने दिनेश के चेहरे पर देखे थे इसलिए खास तौर से मैं उसके बारे में सोच रहा था कि ऐसी हालत में वो क्या सोचता होगा। उसकी उम्र को पार किए हुए मुझे पाँच-छँ वर्ष ही हुए थे, इसलिए मैं जानता था कि उसकी उम्र मूर्ख रहे आने की नही थी। मेरे सोचने को तोडा दिग्विजय ने। मुझसे फुसफुसाहट में कहा—देखो कैसी, "आईडियल फैमिली" है। मैंने चौंकने के बाद कहा—हाँ और मुस्कराता रहा।

मुझे मालूम था कि मैंने गलत कहा। पर दिग्विजय के इस वक्तव्य ने और दिनेश के चेहरे की पीडा ने मेरा पीछा नही छोड़ा। मेरी जिज्ञासा बढ गई यह जानने के लिए कि आखिर क्यो इस परिवार में यह सब हो रहा है। मैंने उस परिवार के अतीत की कल्पना करने लगा। दिग्विजय ने फिर कहा—देखो आम घरों की तरह रामनारायण और उसके पिता दिनेश को अपने से अलग नही मानते। उसको पूरी दोस्ती का सा प्यार देते हैं।

मैंने पूरे होश में उसकी यह बात सुनी। फिर उस माहौल ने मुझे दिनेश बनकर सोचने पर उतारू कर दिया। जान लेने की मेरी इच्छा इतनी तीव्र हो गई थी कि मैंने अपना साथ छोड दिया।

मुझे लगा मैं रामनारायण का अठारह-उन्नीस साल का लड़का हूँ। अपने पिता, दादा और पिता के अफसर और उनके दोस्त के सामने पीता हुआ बैठा हूँ। मैं अंदर से इस स्थिति के लिए शर्मिन्दा हूँ। मैं कभी उस रास्ते पर नहीं पहुँचा जो ऐसी स्थिति से मुझे दूर ले जाए। सब तरफ सुनने मे आता है कि मेरी उम्र पढ़ने की है। किसी तरह पढ़ रहा हूँ। इसलिए माँ-बाप के आसरे हूँ। जब मैं छोटा था तब से ही ऐसे अफसर घर में आते हैं। उनके आने के कारणों को ठीक-ठीक अभी नही समझ पाया हूँ। ये जब नही आते थे, तो

शहर की एक गंदी और सकरी बस्ती में हम लोग रहते थे। मैं घर से बाहर खेल में मगन रहने के बाद भी यह एहसास रखता था कि घर में बड़ी चिड़चिड़ाहट रहती है, और माँ-पिता, पिता-दादाजी का अक्सर झगड़ा होता है और बड़ी बहन सहमी हुई आकर हम लोगों के साथ खेलने लगती है। यह लगभग रूटीन की तरह जारी रहा। फिर एक अन्तराल के बाद मुझसे छोटे दो भाई-बहन और घर में आ गये। फिर तो घर में हर वक्त कुछ न कुछ ऐसा ही रहता कि हम लोग डरे हुए रहते। कुछ दिनों में ऐसे दिन आए जब बड़ी बहन ज्यादातर घर मे रहने लगी और पता नही क्या हुआ कि हर बात में उसका जिक्र आने लगा और आते ही एक असाधारण चुप्पी को जन्म दे जाता।

दादाजी रिटायर होने वाले थे, और उनके पैसों की आशा नही थी। बीमारियों, कर्जों और जरूरतों ने उनके तमाम फन्ड्स को पहले ही एडवान्सों में बदल दिया था। वे सिद्धान्तवादी थे। कभी कोई बुरा काम उन्होने नहीं किया था। पिता घर की हालत देखकर कुछ करना भी चाहते तो दादा करने नही देते। इस बात से माँ चिढ़ती और बड़ी बहन की ओर उंगली दिखा कर हमारा पिता से कहती "इसे मार क्यों नहीं डालते।"

मैं इतना बड़ा हो गया कि शहर के चक्कर लगाया करता था। मुझे चारों ओर रंग ही रंग दिखते थे, जिनकी फरमाईश मैं पिता से करता था और मेरी देखा-देखी मुझसे छोटे भी।

आज पिता की जिस तरह प्रशंसा लोग करते हैं उनके अनुसार पिता ने बहादुरी से दुनियादारी से लड़ाई लडी। इसकी वजह से हम भाई-बहनों को बाद में किसी चीज के लिए तरसना नही पडा। इसका एक कारण यह भी था कि घर में हम बच्चों ने फिर कोई सिद्धान्त वाली बात नही सुनी। जो पिता अक्सर हवा में गालियाँ दिया करते थे उन्होंने अपने अफसरों को बड़े-भाई, छोटे-भाई कहना शुरू कर दिया था।

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

एक दिन बहुत जल्दी ऐसा भी आया जब बड़ी बहन की शादी हो गई और फिर माँ को देखते हुए लगने लगा कि वे अपनी उम्र में दस साल पीछे चली गई हैं। घर में सब कुछ बदलने लगा था। दादाजी कुछ दिनों तक दूर रहने के बाद पिता से आ मिले थे और एक कोने में बैठे खुश रहते थे। फिर पिता के मार्गदर्शन में हम लोगों ने एक खास किस्म की परम्परा बनाई कि जिन्हें उनके अफसर जैसे बड़े लोग बेकार समझते हों, ऐसी मर्यादाएं घर में नहीं रहेंगी।

तभी तो इतनी कम उम्र में मैं अपने पिता और दादा के साथ बैठकर पी रहा हूँ। अभी थोड़ी देर पिता के अफसर ने अपने दोस्त से हमारे परिवार को आदर्श परिवार कहा है। मैं गौरवान्वित हूँ।

पहला पैग हम लोगों का खत्म हो गया है। माँ अन्दर से अभी-अभी बनाई पकौड़ियाँ लेकर आई हैं। अन्दर पन्द्रह-सोलह साल की मेरी छोटी बहन की हलचल सुनाई दे रही है। पर्दे की वजह से वह दिखाई नहीं पड़ती। बड़ी बहन की और इसकी स्थिति इस उम्र में एक सी रही।

तभी अफसर माँ से कहते हैं—भाभी नमस्कार। वे मूड में आ गये हैं। माँ को सम्बोधित करने का उनका लहजा ऐसा ही है। माँ मुस्कुराती हैं और मज़ाक करती हैं—"देवर तो अपने लिए आनन्द की चीज़ लाए हैं, पर हमारे लिए क्या लाए?"

अफसर कहते हैं—हम तो खुद ही आए हैं।

पिता और दादाजी ठहाका लगाते हैं और एक स्वर में कहते हैं—वाह! क्या जवाब है भाई, मज़ा आ गया। मैं चिढ़ भी तो नहीं पाता जब पिता और दादा जी वाह-वाह करते हैं। वे दोनों प्रसन्नता में हँस रहे हैं। माँ भी हँसते हुए अन्दर चली गई।

दादा जी दूसरा पैग बना रहे हैं। पिता उनसे कहते हैं—"बाबू सिगरेट तो निकालो।"

दादाजी बहुत पुराने समय से चलने वाली सिगरेट निकालते हैं।

"आज तो बाबू हम भी तुम्हारी सिगरेट पियेंगे। अफसर दादाजी से कहते हैं।"

दादाजी एक सिगरेट पिता को देते हुए अफसर से कहते हैं—"बेटा ये तो सस्ती सिगरेट है, इसे तुम क्या पियोगे।"

अफसर रुष्ट हो जाते हैं, भावुक होकर दादाजी से कहते हैं—बाबू जब इसे बड़ा भाई पी सकता है तो छोटा भाई क्यों नहीं पी सकता।

दादा जी भला इसका प्रतिवाद कैसे करते। उन्होंने झपट एक सिगरेट अफसर को भी दे दी।

सिगरेट के चार-छै कश लेने के बाद अफसर अपने मित्र से कह रहे हैं—रामनारायण वो आदमी है जिन्होंने मेरी "ज्वाइनिंग रिपोर्ट" लिखी थी। इनका मेरे जीवन में आना बड़ा शुभ है। इन्होंने मुझे इन्टरव्यू के समय वह मौका दिया था कि मैं इन्टरव्यू बोर्ड में उस आदमी के सामने न पड़ूँ जिसके मेरे पिता से अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं। और वह मुझे कभी भी सिलेक्ट नहीं करेगा। इसलिए जब वे किसी कारण से थोड़ी देर को बाहर गये उसी वक्त रामनारायण ने मेरा नाम इन्टरव्यू के लिए पुकारा था और बोर्ड के दूसरे लोगों के सामने, जो मेरे पिता के दोस्त थे मैं इन्टरव्यू देकर आ गया था। उन लोगों ने सिर्फ मेरा नाम पूछ कर मुझे सिलेक्ट कर लिया था। इनके इस एहसान को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

अफसर के दोस्त हाँ-हाँ कर रहे हैं। पर पिता ये सब कुछ सुनकर सिर झुका लेते हैं फिर कहते हैं—"इसमें एहसान की क्या बात है।" आगे एक जुमला भी जोड़ते हैं—"आदमी आदमी के काम आता है" और कृतज्ञता से भर उठते हैं।

अफसर फिर अपने दोस्त से कहते हैं—इससे ही पता चलता है कि इन्सानियत अभी मरी नहीं है। फिर अपने दोस्त को चुप बैठा देखकर कहते हैं—घबराओ नहीं, तुम्हारे भी दिन ठीक हो जायेंगे।

मैं अचानक सोचता हूँ क्या उसी तरह जैसे हम लोगों के हुए।

इतने में दादाजी बातों के बीच आ जाते हैं। वे भी अफसर के दोस्त से कहते है—अरे बेटा तुम फिक्र मत करो, जब कभी जरूरत पड़े मैं और रामनारायण हमेशा तुम्हारे काम के लिए तैयार रहेंगे।

इस पर अफसर अपने दोस्त से कहते है—बताओ, ऐसे लोगों के रहते कैसे नही मिलेगी तुम्हे नौकरी।

अफसर के दोस्त चुपचाप मुस्कुराने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ-कुछ उनके चेहरे पर विस्मय के भाव भी हैं। मुझे थोड़ा फिक्र होता है। मेरे पिता और दादा जी ने अपनी इतनी पहुँच बना ली है कि लोगों का बड़ा-बड़ा काम करवा सकते हैं भले ही किसी भी तरीके से।

अभी तक हम लोगों ने दो-दो पैग ले लिए थे पर कोई भी असंतुलित नही हुआ था।

अफसर फिर अपने दोस्त से कहते है—तुम्हे क्या बताऊ अगर रामनारायण जैसे भले लोग न हों तो हम अफसरों की एक न चले। आखिर तनख्वाह में होता क्या है। अब रामनारायण बिल सेक्शन में हैं तो इनका इतना बडा घर भी है, और हमें दूसरी चीजें पाने मे आसानी भी है। यदि हम मिल-जुलकर ऐसा न करें तो जीना मुश्किल है। मुझे मिलता ही क्या है! एक मिनट की देरी के बाद वे मेरी तरफ देखते हुए कहते हैं—अभी देखो मैं रामनारायण के बेटे के लिए क्या करता हूँ।

मुझे अंदर-ही-अंदर बहुत खुशी होती है यह सुनकर। मैं सारी बातें भूल कर भविष्य के सपने देखने लगता हूँ। पिता भी अक्सर कहते है, तुम ठीक से पढ़ो जब तक अफसर हैं, तुम्हारी अच्छी नौकरी सुरक्षित है। कोई बात मुझे खटकती भी है तो मैं यह सब सुनकर अफसर के प्रति आदर से भर उठता हूँ। सोचता हूँ कितने अच्छे आदमी हैं वे, मेरा अभी से कितना ख्याल रखते हैं।

अपनी बातों को जारी रखते हुए वे अपने दोस्त से कहते हैं—जब मैं नौकरी पर आया और रामनारायण की पिछली जिंदगी से परिचित हुआ तो

मुझे बड़ा दुःख हुआ। हालांकि पिछले अफसरों की वजह से इनकी स्थिति काफी सुधर चुकी थी फिर भी मैंने सोचा इनके लिए मुझे भी कुछ करना चाहिये। तभी से मैंने इन्हें बिल-सेक्शन में बिठा दिया। इनके सम्बन्ध तमाम सप्लायरों से बहुत अच्छे हैं। अभी-अभी तो ये मकान इन्होंने बनाया है। ये अब काफी खुशहाल हैं। इनकी वजह से मैं भी बहुत खुश हूँ। तुम यदि आ गये तो तुम भी बहुत खुश रहोगे।

वे ये बातें कर रहे हैं, मैं उठकर अंदर से और पकौड़ियाँ ले आता हूँ। अफसर पिता से कहते हैं—भाई रामनारायण मजा आ गया आज तो। सच कहता हूँ, तुम्हारे जैसा आदमी मिलना मुश्किल है। पिता गौरव से भाव-विभोर हैं।

"अच्छा अब चलें।" अफसर उठते हुए कहते हैं। सभी लोग उठ गये हैं। इतने में माँ को पता चलता है। वे भी बाहर आ जाती हैं। माँ को देखकर अफसर उनकी ओर बढ़ते हैं। दादा जी अपने आप धीरे से कमरे से बाहर चले जाते हैं। शुरू में अफसर माँ के गाल पर हाथ फेरने लगते हैं और कहते हैं—भाभी तुम बहुत अच्छी हो। यदि तुम साथ न हो तो रामनारायण जैसे आदमी का जीवन कैसे चले।

इस स्थिति में मैं मुँह दूसरी ओर फेर लेता हूँ। ऐसा हमेशा होता है कि जब वे माँ से इस तरह व्यवहार करते हैं, तो पिता हँसते नजर आते हैं और मैं मुँह दूसरी ओर फेर लेता हूँ और अचानक मेरे अन्दर यह अंदेशा उठने लगता है कि कहीं मेरी पन्द्रह-सोलह साल की छोटी बहन बाहर न आ जाए। असल में मेरा मुँह उस ओर हो जाता है, जिस ओर मेरी बहन अंदर कमरे में होती है। और यदि ऐसे वक्त छोटा भाई सामने दिख जाए तो उसे डाँट देता हूँ ताकि बहन भी अंदर सहम जाए और बाहर कतई न आए। फिर मन थोड़ी देर को बहुत उदास हो जाता है अन्दर एक गर्म साँस भर जाती है। मैं कुछ भी सोचने लायक नहीं रह जाता। जितनी बार यह परिस्थिति अपने को दोहराती है ऐसा लगता है वह गर्म साँस पहले से ज्यादा फैल गई है और मेरा शरीर कहीं फट न जाए।

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

अचानक मैं अपने आप में वापिस आ गया। एक तो उस माहोल ने इतना जकड़ लिया था कि मुझे अचानक यह एहसास करना पड़ा कि आखिरकार मैं क्यों यहाँ फंस गया हूँ। इसका जवाब भी मुझे तुरन्त मिल गया कि यदि मैं बेरोजगार न होता तो क्यों आना पड़ता यहाँ मुझे, दूसरे उसी वक्त दिग्विजय ने भी मुझे हिलाते हुए कहा कि चलो। मैं तेज आवेश मे उसके साथ बाहर गया आ।

हम लोग सड़क पर खड़े थे। रामनारायण का परिवार हमें अपने गेट तक छोड़ने आया था। दिग्विजय ने उन्हें धन्यवाद दिया और हम लोग आगे बढ़ गये। उस परिवार के विचित्र माहौल की सनसनी मेरे दिमाग पर छायी थी। मैं उमसे छुटकारा नही पा रहा था। दिग्विजय जैसो के लिए अंदर गालियाँ पैदा हो रही थी पर बाहर नही आ पा रही थी। मैं यदि उस परिवार में बैठे हुए उस लड़के के अन्दर न पहुँच गया होता तो कब का वहाँ से भाग जाता। अब भी वहाँ की सोचते हुए मैं खास तौर से उस लड़के के बारे ही मे सोच रहा था। मैं सोच रहा था मैंने अपने आप को उसके रूप में रखकर जो महसूस किया वह भी महसूस करता होगा। और बाहर आते वक्त उसके चेहरे पर जो कुछ मैंने देखा उससे लगता है कोई बात ऐसी जरूर है जो उसे अखरती है। मेरी उसके बारे में धारणा प्रबल हो गई कि एक दिन वो जरूर फूट पड़ेगा।

हम लोगो ने चलना शुरू कर दिया था। दिग्विजय मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। इतनी पी लेने के बाद मुझे वह अपने पुराने रूप में दिख रहा था। जबकि मैं समझ गया था कि यह चेहरा किसी को भी धोका दे सकता है। मजबूरी का फायदा उठाना इसके संस्कार मे है।

चलते-चलते जहाँ उस कॉलोनी की गली मुख्य सड़क के लिए मुड़ती थी दिग्विजय रुक गया। उसके प्रति इतनी घृणा के बावजूद मैं अभी और कुछ जानने की गरज में उसके साथ था।

उसने कहा—तुम्हें आश्चर्य तो नही हुआ ?

मैं समझ गया कि उसका इशारा किस ओर है। मैंने समझदारी से उल्टा प्रश्न किया—किस बात का ?

उसने स्पष्ट किया—अरे रामनारायण के परिवार के वातावरण को देखकर ?

नहीं तो, ऐसा तो आजकल कॉमन है, फिर यह सब अच्छी निशानी है। .

मेरे इस जवाब में वह थोड़ी देर तक सोचता रहा। मुझे भी लगा कि मैं इस तरह जवाब देकर भूल कर चुका हूँ। वह इतनी जल्दी कैसे विश्वास करेगा कि मैं इनका अभ्यस्त हूँ।

उसके चेहरे पर चिन्ता की एक लकीर सी खिंच गई। शायद उसे लगा कि उसने बहुत जल्दी अपनी किताब पूरी पढ़ा दी। वह सम्हल गया। उसने बड़ी संजीदगी से कहना शुरु किया—असल में आजकल आपसी सम्बन्धों की धारणाएँ बदल गई हैं। हम जैसों को उनसे और उन जैसों को हम से बनाकर चलना पड़ता है। ऐसे लोग अधिकाशत. दफ्तरों में मिल जाते है और फिर उन्हें ऐसा करना ही पड़ता है।

मैंने सोचा अभी इसकी नौकरी लगे ज्यादा वक्त नहीं हुआ है पर इसका अनुभव कितना विस्तृत है जैसे बचपन का पढ़ा पाठ हो। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह किस तरह बात आगे करे इसलिए बातों को गोल-गोल करते हुए उसने आगे कहा—हम चाहते हैं कि एक दूसरे के फायदे के लिए ऐसा हो। इसलिए हम उनमें से सबसे अधिक समझदार आदमी से सम्बन्ध बनाते हैं। रामनारायण बहुत समझदार आदमी है। ये ही भले लोग दफ्तर की तमाम घटनाओं की जानकारियाँ हमें देते हैं। "गिव एन्ड टेक" होने के बाद भी एक आत्मीयता कायम रहती है। अब ऐसे लोग समझदारी से जितना कमाएं-खाएं हमें आपत्ति नहीं होती, पर भाई मशीन तो ये ही हैं। न गड़बड़ी होगी तो सुधारा इन्हें ही जाता है। हम अफसर लोग तो ऐसे पुर्जे हैं जो बहुत कम काम में आते हैं।

अपना अन्दाज बदलने के बाद भी उसने काफी कुछ कह दिया था। मैं उसकी बातों का विरोध तो कह नहीं सकता था इसलिए हाँ-हाँ करता रहा। और विशेष रूप से सुधारे जाने वाली बात को सोचता-समझता रहा। मुझे लग रहा था कि, नौकरी में लगने के पहले ही मैं काफी जान गया हूँ।

उसने फिर कहा—ऐसे लोगों को लाभ दिलाने के चक्कर में कभी-कभी अपनी कम्प्लेंट भी हो जाती है। ये लोग कभी-कभी इतने अराजक हो जाते हैं कि सीधे-सीधे सम्पर्क बनाने लगते हैं और हमें खबर तक नहीं होती तो उसके लिए हमें कुछ कानून बनाने पड़ते हैं जिससे वे मजबूरी में हमें याद करते हैं।

उसने मुझे दिलासा देने के लिए अंत में कहा—वैसे रामनारायण बहुत अच्छा आदमी है। हमारे लिए जी-जान से जुट जाता है। तुम्हें क्या लगता है? उसने मुझसे पूछा।

मैंने कहा—हाँ मुझे भी खराब नहीं दिखता।

यह मैं कह तो गया पर एकदम मुझे लगा कि मैं उसके साथ ठीक ढंग से पेश नहीं आ रहा हूँ। कल मुझे भी नौकरी आखिरकार चाहिए और दिलवायेगा यही या इस जैसा और कोई। जैसे ही नौकरी की बात दिमाग में आई अचानक फिर से मैं रामनारायण के घर के वातावरण में पहुँच गया।

फिर घर में मेरी माँ मुझे याद आई। मैंने अपनी एक ज्यादा जवान बहन को याद किया। मैंने आगे तक निगाह दौड़ाई कि मेरी शादी भी होगी और निसंदेह मेरी बीबी भी आयेगी। दिग्विजय से सम्बन्ध और बढ़े तो वह अपने किस्म की आत्मीयता मुझसे भी निभायेगा। तब क्या होगा? इस प्रश्न ने मुझे एक भयंकर आंतक के घेरे में ले लिया।

और आगे क्या होगा यह मैंने नहीं सोचा, क्योंकि उस वक़्त मेरी हिम्मत नहीं थी। मन वितृष्णा और गुस्से से भर गया। मुझे ऐसा लगा कि कुछ भी अनाप-शनाप होने वाला है। तभी चलते हुए उसने कहा—देखो रात बहुत हो गई है। तुम कल सुबह साढ़े नौ बजे अपने सर्टिफिकेट्स लेकर दफ्तर आ

जाना। अभी जगह खाली है। बाद में न हुई और यदि बीच मे कोई आ गया तो उसे "ओबलाइज" करना पड़ेगा।

सिर्फ यहीं तक मैंने उसकी बात सुनी। मेरे अन्दर वही गर्म सांस तेजी से उठी जो रामनारायण के घर मे उसके लडके के रूप में मैंने पायी थी। एक तेज डकार के साथ वह मेरे अन्दर से बाहर आई और मैंने उसके मुँह पर थूकना चाहते हुए भी नही थूका और उसे बिना जवाब दिये लगभग दौड़ता हुआ गली मे मुड गया। नाली के पास खड़े होकर मैंने उल्टी की। कई मिनट मैं हाँफता हुआ खड़ा रहा। जब तेज सांस थमी तो मैं संयत हुआ और मुझे संतोष हुआ कि मैंने वह गल्ती नही की जो करना चाह रहा था। फिर मैंने तेजी से घर की ओर चलना शुरू किया। सुबह के बारे मे मुझे धीरज से सोचना था।

□□

१ गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

रिश्ता

मिसेस शर्मा बैंगलोर से आई थी। उनके भाई यहाँ टी० टी० सी० कैम्पस में रहते हैं। खास तो नहीं पर इतनी जानकारी जरूर है कि वे बहुत बड़े इंजीनियर हैं, जिसका अन्दाजा उनके रहन-सहन से होता रहता है। उन्ही के पास वे आई थी। उनके प्रति तो वही बैंगलोर में एक स्टील कारखाने के मैनेजर हैं। यहाँ जबलपुर में मिसेस शर्मा के भाई के घर बहुत ही घरेलू किस्म का कोई आयोजन था जिसमें शामिल होने वे आई थी। पता नहीं क्या हुआ कि उन्हें इस घर की रिश्तेदारी याद आ गई और अपनी व्यस्तताओं में से थोड़ा समय वे यहाँ देने चली आईं। अब यहाँ तो मुश्किल से दो कमरों का मकान है और वह भी किराये का। क्या पता ऐसे कमरों में उनके नौकर भी न रहते हों। इतने बड़े कारखाने का मैनेजर कोई छोटा आदमी तो होता नहीं जिसका एक सजीला सा बंगला न हो। लेकिन यहाँ इस घर में तो चारों ओर मनहूसियत टपकती रहती है। खूँटियों पर मैले-कुचैले कपड़े लटके रहते हैं। दीवारों पर साल भर सीलन रही आती है जिस वजह से उनके प्लास्टर रोज ही कहीं-न-कहीं से उखड़ते रहते हैं। तीन जनों का परिवार है। माता-पिता और एक लड़का चौबीस-पच्चीस

उनका सत्कार करना ही चाहिए। और हम तो नही जा रहे हैं उनके घर, वे ही यहाँ आ रही है तो इसमें हमें अच्छा लगना ही चाहिए। यहाँ लोगों को भी पता चलेगा कि हमारे कितने बड़े रिश्तेदार हैं।

माँ की इन बातों ने लड़कियों को प्रभावित किया और वे प्रसन्न हो गई। ये ढाढ़स भी उन लोगों ने खुद को बँधाया कि हम लोग गिरे हुए लोग नहीं है, तभी तो वे इतनी धनवान और प्रतिष्ठावान होते हुए भी हम लोगो से स्वतः मिलने आ रही हैं। उनमे एक उत्साह जागा। वे तीनों घर को सकेरने मे लग गईं।

सबसे पहले घर को धोया गया। फिर सूखने पर झाड़ू लगाई गई। फिर खूटियो से लटके कपड़ो को फिलहाल लोहे की संदूक में बंद किया गया। कुछ जो नये से कपड़े थे उन्हे पूर्ववत् टंगा रहने दिया गया। बाहर सोफे को, जिसकी पालिश पुरानी होने की वजह से निकल गई थी, मझली ने आधा घंटा की मेहनत से थोडा सा चमका दिया था। फिर भी वह सोच रही थी कि इसे देख कर कहीं वे नाक-भौं न सिकोड़ें। यह सोचकर उसने उसमे पड़े गद्दे के खोलों को धोकर सूखने डाल दिया। फिर सोचा हममे जो बन रहा है, वही तो कर सकते है। अब उनको हमारा घर चाहे जैसा लगे। एक हीनता के बावजूद उत्साह को उसने कम नही होने दिया। तीनों बहनों ने जब अपने-अपने काम कर लिए तो एक दूसरे से पूछताछ की कि सब कुछ ठीक-ठाक हो गया कि नहीं। एक मत होने पर उन लोगों ने घर की चिन्ता से मुक्ति पाई।

दोपहर ढल रही थी। अब आया बच्चों का नम्बर। बड़ी लड़की के दो लड़के थे। पहला रज्जू दस साल का दूसरा गुड्डू उससे तीन साल छोटा। मझली ने अब तक एक लड़की ही पैदा की थी। छोटी बहन के एक लड़का था रमेश और उससे छोटी लड़की बिट्टी। ये सब बच्चे दस साल की आयु के अन्दर के थे। तीनों बहनों ने अपने-अपने बच्चों को पकड़ा और उन्हें मुँह-हाथ धुलाकर उनके सबसे अच्छे कपड़े, जो हमेशा बाहर आने-जाने और समारोहों

में काम आते थे, पहना दिये । यह सब देखकर बच्चे बार-बार पूछ रहे थे कि क्या आज सिनेमा देखने जाना है और जब उनको यह जवाब मिल रहा था कि ऐसा नही है बल्कि घर मे मेहमान आ रहे हैं तो उन्हे बड़ा आश्चर्य हो रहा था । क्योकि पहले ऐसा कभी नही हुआ था । आज खास तौर से हिदायत भी दी गई थी कि इन कपडो मे सिकुड़न नही आनी चाहिए और घर में भी कोई ऊधम नही होना चाहिए । इन हिदायतो की वजह से वे कुछ-कुछ अपने आपको जकडा हुआ महसूस कर रहे थे । पर इन कपड़ों को पहन लेने के कारण खुशी अधिक थी ।

बच्चो से फुरसत पाने के बाद उन लोगो ने भी अपनी कीमती साड़ियाँ, जो कम-से-कम एक-एक तो सबके पास थी, निकाली और पहन ली । माँ के द्वारा बार-बार मना करने के बावजूद उन्हे भी एक अच्छी साडी पहना दी । तब कही जाकर उन लोगो ने हर चिन्ता से खुद को मुक्त पाया । सोचा अब मिसेस शर्मा के आने पर कोई परेशानी न होगी ।

शाम को मिसेस शर्मा अपने भाई की कार से आई तो तीनो बहनें और माँ दरवाजे पर ही खडी थी । जब वे कार से उतर रही थी तो गली का नजारा ही अलग था । घर से थोडी दूर पर ड्राइवर ने कार खडी की थी । कार की आवाज सुनकर गली की तमाम औरतें बाहर निकल आई थी और अपने दरवाजो पर खडी होकर कार से उतरने वाली महिला को कौतूहल से देख रही थी । इस औरतो ने पुलिस के वाहनो को छोडकर गली में इस तरह का वाहन कभी नही देखा था ।

तीनो बहनें और विशेष रूप से माँ इन औरतों को देख रही थी और उनको आश्चर्यचकित देखकर एक गौरवशाली खुशी से भर गई थी ।

मिसेस शर्मा अपनी सबसे छोटी लड़की पिंकी के साथ आई थी । बहुत ही झिलमिल-झिलमिल करती साडी उन्होने पहन रखी थी । इस वजह से उनकी उम्र कम लग रही थी । एक अत्यन्त सजीला और आधुनिक पर्स उनके हाथ में

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

था। एक हाथ से वे पिंकी की उँगली पकड़े हुए थी। पिंकी भब्बेदार फ्राक पहने हुए थी।

जब वे दरवाजे पर आई तो बड़े ही आत्मीय ढंग से उन्होंने माँ को नमस्कार किया। यहाँ से माँ सहित लड़कियो ने भी जवाब में नमस्कार किया। पर इन लोगो के नमस्कार के ढंग से स्पष्ट था कि उनके हाथ शरमा रहे है।

माँ ने उनको अन्दर आने को कहा। जब वे अन्दर आ गई तो बाहर गली की औरतें एक जगह सिमट गईं और इस घर की ओर देखते हुए खुसुर-फुसुर करने लगी। उनकी इस हरकत को माँ ने खिड़की से मुस्कराते हुए देखा।

अभी तक मिसेस शर्मा मुस्कुराते हुए खड़ी थी। उनकी छोटी सी खूबसूरत पिंकी दीवारो पर लगे भगवानों के कैलेंडरों को देख रही थी। तभी माँ ने उन्हें बैठने को कहा। थोडी देर तक तो वे सोफे को इस तरह देखती रही मानो बैठने की जगह तलाश रही हो। उनकी इस हरकत को देखकर इधर मझली जिसने सोफे के गद्दे के खोलों को धोया था, ध्यान से सोफे की ओर देख रही थी। पर उसकी समझ में नही आ रहा था कि मिसेस शर्मा उस पर बैठ क्यों नही रही है, जबकि गद्दे में कोई गन्दगी नही दिख रही है। थोड़ी देर बाद माँ के पुनः अनुरोध पर जब वे सोफे के एक कोने में बैठ गई तो मझली को राहत मिली। उन्होंने माँ से पूछा—भाई साहब कहाँ हैं? उनका इशारा लड़कियो के पिता की ओर था। माँ ने कहा—"कल ही वे भोपाल चले गये अपने स्कूल के सरकारी काम से।"

तब तक बहनो ने उनकी पिंकी को हाथों-हाथ ले लिया था। उसे कई तरीकों से दुलार रही थी और वह उन्हें आश्चर्य से देख रही थी। लड़कियो के बच्चे भी इस कोशिश मे थे जैसा उनकी माताएँ पिंकी को प्यार कर रही हैं वैसा वे भी करें। पर पिंकी उनसे दूर-दूर भाग रही थी। जब लड़कियों ने पिंकी को छोड़ा तो अचानक गुड्डी ने उसकी भब्बेदार फ्राक को पकड़ लिया और अपनी माँ से खुशी में चिल्लाते हुए कहा—"माँ देखो इस लड़की की फ्राक कितनी अच्छी है।"

में काम आते थे, पहना दिये। यह सब देखकर बच्चे बार-बार पूछ रहे थे कि क्या आज सिनेमा देखने जाना है और जब उनको यह जवाब मिल रहा था कि ऐसा नहीं है बल्कि घर में मेहमान आ रहे हैं तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हो रहा था। क्योंकि पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था। आज खास तौर से हिदायत भी दी गई थी कि इन कपड़ों में सिकुड़न नहीं आनी चाहिए और घर में भी कोई ऊधम नहीं होना चाहिए। इन हिदायतों की वजह से वे कुछ-कुछ अपने आपको जकड़ा हुआ महसूस कर रहे थे। पर इन कपड़ों को पहन लेने के कारण खुशी अधिक थी।

बच्चों से फुरसत पाने के बाद उन लोगों ने भी अपनी कीमती साड़ियाँ, जो कम-से-कम एक-एक तो सबके पास थी, निकाली और पहन ली। माँ के द्वारा बार-बार मना करने के बावजूद उन्हें भी एक अच्छी साड़ी पहना दी। तब कहीं जाकर उन लोगों ने हर चिन्ता से खुद को मुक्त पाया। सोचा अब मिसेस शर्मा के आने पर कोई परेशानी न होगी।

शाम को मिसेस शर्मा अपने भाई की कार से आईं तो तीनों बहनें और माँ दरवाजे पर ही खड़ी थी। जब वे कार से उतर रही थी तो गली का नजारा ही अलग था। घर से थोड़ी दूर पर ड्राइवर ने कार खड़ी की थी। कार की आवाज सुनकर गली की तमाम औरतें बाहर निकल आईं थी और अपने दरवाजों पर खड़ी होकर कार से उतरने वाली महिला को कौतूहल से देख रही थी। इन औरतों ने पुलिस के वाहनों को छोड़कर गली में इस तरह का वाहन कभी नहीं देखा था।

तीनों बहनें और विशेष रूप से माँ इन औरतों को देख रही थी और उनको आश्चर्यचकित देखकर एक गौरवशाली खुशी से भर गईं थी।

मिसेस शर्मा अपनी सबसे छोटी लड़की पिंकी के साथ आईं थी। बहुत ही झिलमिल-झिलमिल करती साड़ी उन्होंने पहन रखी थी। इस वजह से उनकी उम्र कम लग रही थी। एक अत्यन्त सजीला और आधुनिक पर्स उनके हाथ में

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
I-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

था। एक हाथ से वे पिंकी की उँगली पकड़े हुए थी। पिंकी झब्बेदार फ्राक पहने हुए थी।

जब वे दरवाजे पर आईं तो बडे ही आत्मीय ढंग से उन्होंने माँ को नमस्कार किया। यहाँ से माँ सहित लडकियो ने भी जवाब में नमस्कार किया। पर इन लोगो के नमस्कार के ढंग से स्पष्ट था कि उनके हाथ शरमा रहे हैं।

माँ ने उनको अन्दर आने को कहा। जब वे अन्दर आ गईं तो बाहर गली की औरतें एक जगह सिमट गईं और इस घर की ओर देखते हुए खुसुर-फुसुर करने लगीं। उनकी इस हरकत को माँ ने खिडकी से मुस्कराते हुए देखा।

अभी तक मिसेस शर्मा मुस्कुराते हुए खडी थी। उनकी छोटी सी खूबसूरत पिंकी दीवारो पर लगे भगवानों के कैलेंडरो को देख रही थी। तभी माँ ने उन्हे बैठने को कहा। थोडी देर तक तो वे सोफे को इस तरह देखती रही मानो बैठने की जगह तलाश रही हो। उनकी इस हरकत को देखकर इधर मझली जिसने सोफे के गद्दे के खोलों को धोया था, ध्यान से सोफे की ओर देख रही थी। पर उसकी समझ में नही आ रहा था कि मिसेस शर्मा उस पर बैठ क्यों नही रही है, जबकि गद्दे में कोई गन्दगी नही दिख रही है। थोड़ी देर बाद माँ के पुन: अनुरोध पर जब वे सोफे के एक कोने में बैठ गईं तो मझली को राहत मिली। उन्होंने माँ से पूछा—भाई साहब कहाँ है? उनका इशारा लडकियो के पिता की ओर था। माँ ने कहा—"कल ही वे भोपाल चले गये अपने स्कूल के सरकारी काम से।"

तब तक बहनो ने उनकी पिंकी को हाथों-हाथ ले लिया था। उसे कई तरीकों से दुलार रही थी और वह उन्हे आश्चर्य से देख रही थी। लड़कियों के बच्चे भी इस कोशिश में थे जैसा उनकी माताएँ पिंकी को प्यार कर रहीं है वैसा वे भी करें। पर पिंकी उनसे दूर-दूर भाग रही थी। जब लडकियों ने पिंकी को छोडा तो अचानक गुड्डों ने उसकी झब्बेदार फ्राक को पकड लिया और अपनी माँ से खुशी में चिल्लाते हुए कहा—"माँ देखो इस लडकी की फ्राक कितनी अच्छी है।"

में काम आते थे, पहना दिये । यह सब देखकर बच्चे बार-बार पूछ रहे थे कि क्या आज सिनेमा देखने जाना है और जब उनको यह जवाब मिल रहा था कि ऐसा नही है बल्कि घर मे मेहमान आ रहे हैं तो उन्हे बड़ा आश्चर्य हो रहा था । क्योकि पहले ऐसा कभी नही हुआ था । आज खास तौर से हिदायत भी दी गई थी कि इन कपड़ो में सिकुड़न नही आनी चाहिए और घर मे भी कोई ऊधम नही होना चाहिए । इन हिदायतो की वजह से वे कुछ-कुछ अपने आपको जकड़ा हुआ महसूस कर रहे थे । पर इन कपड़ो को पहन लेने के कारण खुशी अधिक थी ।

बच्चो से फुरसत पाने के बाद उन लोगो ने भी अपनी कीमती साड़ियाँ, जो कम-से-कम एक-एक तो सबके पास थी, निकाली और पहन ली । माँ के द्वारा बार-बार मना करने के बावजूद उन्हे भी एक अच्छी साड़ी पहना दी । तब कही जाकर उन लोगो ने हर चिन्ता से खुद को मुक्त पाया । सोचा अब मिसेस शर्मा के आने पर कोई परेशानी न होगी ।

शाम को मिसेस शर्मा अपने भाई की कार से आईं तो तीनों बहनें औ माँ दरवाजे पर ही खडी थी । जब वे कार से उतर रही थी तो गली का नजारा ही अलग था । घर से थोडी दूर पर ड्राइवर ने कार खडी की थी । कार की आवाज सुनकर गली की तमाम औरतें बाहर निकल आई थी और अपने दरवाजो पर खडी होकर कार से उतरने वाली महिला को कौतूहल से देख रही थी । इस औरतो ने पुलिस के वाहनो को छोड़कर गली में इस तरह का वाहन कभी नही देखा था ।

तीनो बहनें और विशेष रूप से माँ इन औरतो को देख रही थी और उनको आश्चर्यचकित देखकर एक गौरवशाली खुशी से भर गई थी ।

मिसेस शर्मा अपनी सबसे छोटी लड़की पिंकी के साथ आई थी । बहुत ही झिलमिल-झिलमिल करती साडी उन्होने पहन रखी थी । इस वजह से उनकी उम्र कम लग रही थी । एक अत्यन्त सजीला और आधुनिक पर्स उनके हाथ मे

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

था। एक हाथ से वे पिंकी की उँगली पकड़े हुए थी। पिंकी भब्बेदार फ्राक पहने हुए थी।

जब वे दरवाजे पर आईं तो बड़े ही आत्मीय ढंग से उन्होने माँ को नमस्कार किया। यहाँ से माँ सहित लड़कियो ने भी जवाब मे नमस्कार किया। पर इन लोगों के नमस्कार के ढंग से स्पष्ट था कि उनके हाथ शरमा रहे है।

माँ ने उनको अन्दर आने को कहा। जब वे अन्दर आ गईं तो बाहर गली की औरतें एक जगह सिमट गईं और इस घर की ओर देखते हुए खुसुर-फुसुर करने लगी। उनकी इस हरकत को माँ ने खिड़की से मुस्कराते हुए देखा।

अभी तक मिसेस शर्मा मुस्कुराते हुए खडी थी। उनकी छोटी सी खूबसूरत पिंकी दीवारो पर लगे भगवानो के कैलेंडरो को देख रही थी। तभी माँ ने उन्हे बैठने को कहा। थोडी देर तक तो वे सोफे को इस तरह देखती रही मानो बैठने की जगह तलाश रही हों। उनकी इस हरकत को देखकर इधर मझली जिसने सोफे के गद्दे के खोलों को धोया था, ध्यान से सोफे की ओर देख रही थी। पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मिसेस शर्मा उस पर बैठ क्यों नही रही हैं, जबकि गद्दे में कोई गन्दगी नही दिख रही है। थोडी देर बाद माँ के पुनः अनुरोध पर जब वे सोफे के एक कोने में बैठ गईं तो मझली को राहत मिली। उन्होने माँ से पूछा—भाई साहब कहाँ है? उनका इशारा लडकियो के पिता की ओर था। माँ ने कहा—"कल ही वे भोपाल चले गये अपने स्कूल के सरकारी काम से।"

तब तक बहनों ने उनकी पिंकी को हाथो-हाथ ले लिया था। उसे कई तरीकों से दुलार रही थी और वह उन्हें आश्चर्य से देख रही थी। लडकियों के बच्चे भी इस कोशिश मे थे जैसा उनकी माताएँ पिंकी को प्यार कर रही हैं वैसा वे भी करें। पर पिंकी उनसे दूर-दूर भाग रही थी। जब लडकियो ने पिंकी को छोड़ा तो अचानक गुड्डो ने उसकी भब्बेदार फ्राक को पकड़ लिया और अपनी माँ से खुशी में चिल्लाते हुए कहा—"माँ देखो इस लड़की की फ्राक कितनी अच्छी है।"

मझली ने तुरन्त उसके हाथ से पिंकी की फ्राक छुड़ाई और गुड्डो की इस हरकत पर शर्मिन्दा होते हुए उसे डाटा फिर मिसेस शर्मा से कहा—"हमारी गुड्डो की रुचियां बहुत अच्छी हैं।"

मिसेस शर्मा ने सआश्चर्य कहा—"अच्छा।" फिर मुस्कुराती रहीं। उनके मुस्कुराने मे कोई चीज ऐसी थी जो मंझली को भेदती चली गई। गुड्डो तब तक बाहर के प्लेटफार्म से लगी नाली के पास जाकर पेशाब करने लगी। मिसेस शर्मा अब तक गुड्डो को ही देख रही थी। उसे ऐसा करता देख उन्होंने मंझली की ओर देखा और मुस्कुरा दी। मंझली इस मुस्कुराहट का अर्थ भी समझ गई। वह अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ के रह गई। उसने सोचा कितनी बार समझाया था इन बच्चो को कि उनके आने पर गलत हरकतें मत करना पर ये है ही मूर्ख। फिर भी उसे लगा इसे ढकना चाहिए। उसने झेंप मिटाते हुए उनसे कहा—"हमारे खरगौन मे हम लोगो को बहुत अच्छा क्वार्टर मिला है। उसमें सब सुविधाएँ है।"

उसकी बात सुनकर मिसेस शर्मा ने चेहरे पर न समझ में आने वाली बातों पर आने वाले भाव लाए और बड़ी मधुर आवाज में कहा—"अच्छा।" फिर पूछा—क्या करते है तुम्हारे पति ?

यह प्रश्न मंझली के लिए टीसने वाला था। उसने अटकते हुए कहा—"जी वे टीचर है।" यह सुनकर मिसेस शर्मा का चेहरा सतोष से भर गया। फिर उन्होने कहा—अच्छा तो वे 'माSSSस्टर' है।

"मास्टर" शब्द के इतना लम्बा खीचे जाने को मझली समझ गई। फिर उनके सामने वह रुक नही सकी। उसने गुड्डो की उँगली पकडी और उनसे कहा—मैं अभी आई। और अन्दर चली गई।

माँ को अभी-अभी मिसेस शर्मा और मझली के बीच हुए वार्तालाप का अर्थ समझ मे आ गया था पर वे चुप थी। सोच रही थी फायदा ही क्या है कुछ कहने का। बेकार मे मिसेस शर्मा नाराज हो जायेंगी। एक क्षण को उन

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1934)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

पर गुस्सा भी आया, पर वह तुरन्त मँझली की ओर चला गया। फिर उन्होंने ध्यान से सुना अन्दर गुड्डो को चाँटा खाते हुए। झाँककर देखा तो पाया मँझली गुड्डो को लिए हुए पिछवाडे मैदान की ओर जा रही है।

इधर बडी जो अब तक बच्चो को उनके ऊधम करने पर डांट रही थी, से मिसेस शर्मा ने कहा—"बहुत गर्मी है।"

बडी ने तुरन्त सामने रखा पंखा चला दिया। वह खडखडाने लगा। जिसकी आवाज सुनकर बडी ने कनखियो से मिसेस शर्मा की तरफ देखा फिर माँ से पूछा—क्यो माँ ! क्या इसमे तुम लोग तेल-वेल नही डालते ?

इसके पहले कि माँ कुछ कहती मिसेस शर्मा ने तपाक से कहा—"मुझे लगता है यह बहुत पुराना फैन है। भाव पुरानेपन के लिए हिकारत भरा था।"

माँ को उनकी तत्परता पर आश्चर्य हुआ। बडी जल्दी से उन्होने जवाब सोचा और उतनी ही तत्परता से कहा—लेकिन आप कुछ भी कहिए, पुरानी चीजें बहुत भरोसे की होती है।

माँ के इस वाक्य में निहित तल्खी को मिसेस शर्मा पहचान गई। उन्होने एक छोटी सी हँसी का टुकडा कमरे में गुंजाया फिर कहा—हाँ शायद आप ही ठीक कहती है।

इस पर माँ झुझला गई। उन्होने बात बनाते हुए और अपनी सफाई जरूरी मानते हुए कहा—असल में क्या है कि इन लडकियो के पिताजी को आजकल बहुत कम फुरसत मिल पाती है। इसलिए चीजो पर ध्यान नहीं दे पाते।

मिसेस शर्मा ने कुछ-कुछ विस्मय और करुणामय जुबान मे पूछा—क्या भाई साहब अभी भी सारा-सारा दिन ट्यूशन पढ़ाने मे व्यस्त रहते हैं, पहले की तरह ? पहले की तरह पर उन्होंने जोर दिया।

मिसेस शर्मा के इस सवाल ने माँ को अन्दर-ही-अन्दर विचलित कर दिया। उन्हें जवाब नही सूझ रहा था। वे पछता रही थी कि उनको इतनी दलीलें

देने की बजाय मान लेना था कि पंखा पुराना है। उस हालत में यह ट्यूशन वाली बात तो न उखड़ती। वे गड्ड-मड्ड कुछ कहने वाली थीं कि मिसेस शर्मा ने फिर पूछा—क्या राजू कुछ नहीं करता ? फिर चौंक कर स्मरण करने की मुद्रा में उन्होंने कहा—अरे हाँ ! उसे तो भूल ही गई थी। कहाँ गया वह ? अब तो वह काफी बड़ा हो गया है।

अब माँ तो कह नहीं सकती थी कि वह पिक्चर देखने गया है जबकि अभी परीक्षाओं का समय है। इसलिए काफी देर चुप रहीं और जैसे ही बोलना चाहा कि बड़ी जो अब तक माँ की हालत देख रही थी ने बात सँभाल ली। उसने मिसेस शर्मा से कहा—राजू अभी एम० ए० कर रहा है। हम लड़कियों और बच्चों की भीड़ की वजह से शाम को अपने दोस्त के घर पढ़ने चला जाता है।''''''यह कहते हुए उसने बगल में बैठी हुई माँ को कुहनी मार कर अपनी बात समझा दी। माँ ने तुरन्त उसकी ओर देखते हुए बड़ी की बात से सहमति जाहिर की।

मिसेस शर्मा के प्रश्नों से माँ अब तक बौखला गई थी। बड़ी के हस्तक्षेप से उन्हें सान्त्वना सी मिली। परन्तु उन्हें डर था कि बातचीत का प्रवाह कहीं वहीं न लौट जाये। इसलिए तुरन्त उन्होंने छोटी से कहा—अच्छा अब बातें बहुत हो गई गा तो जरा चाय बना ला।

छोटी अब तक वहीं बैठी थी और सभी बातों का अर्थ समझ रही थी। हर बार कुछ बोलना चाहते हुए भी किसी शक्ति से दबी चुप थी। जब माँ ने उसे चाय बना लाने को कहा तो अचानक उसे महसूस हुआ कि राहत मिल गई। वह एक पल भी गँवाये बिना अन्दर चली गई।

बाहर का कमरा थोड़ी देर तक गुमसुम रहा। जब माँ और बड़ी को मिसेस शर्मा ने चुपचाप बैठे देखा तो कुछ सोचते हुए कहा—आपको राजू की ही उम्र का तो हमारा प्रवीण है। छः महीने पहले वह आई० ए० एस० की प्रिलिम्नरी में पास हो गया है। अब फाइनल एक्जाम की तैयारी में जुटा है।

प्रयान (कविता संग्रह : 1984)
, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मैंने उसे बैंगलोर से चलते हुए कहा था कि तुम भी चलो हमारे साथ। दो ही दिन की तो बात है। तुम्हारा मन भी बहल जायेगा। पर वह हिला भी नही। अन्त में मुझे हार कर पिंकी के साथ आना पडा। फिर कुछ देर रुक कर और माँ के चेहरे के भावो को पढते हुए आगे कहा—आप विश्वास नही करेंगी इतना अधिक पढता है कि खाना खाने का होश नही रहता उसे। मैं तो गर्व करती हूँ अपने लड़के पर।

इतना कह कर वे उस तरह माँ को देखने लगी जिस तरह कोई जुआरी ताश का इक्का फेंक कर देखता है।

माँ अब तक काफी संयत हो गई थी, इसलिए उनकी बात से बात मिलाते हुए कहा—हम बड़े भाग्यशाली हैं जो हमारे लड़के अच्छे निकले, वरना आजकल तो लड़को को खाने-पीने, सोने और पिक्चर देखने से फुरसत कहाँ। पर देखो न अपने राजू को। बरसो पिक्चर नही देखा। कभी-कभी तो उसके पिता जी ही कहते है कि भाई तू तो पढता ही रहता है, कभी घूमने-फिरने जाया कर।

माँ इतना कह ही पाई थी कि पिंकी किसी बात पर रोने लगी। मिसेस शर्मा का ध्यान स्वाभाविक रूप से अपनी बेटी की ओर गया। उसे लिपटाते हुए प्यार से पूछा—क्या हो गया बेटे ?

पिंकी ने रोते-रोते छोटी की लडकी बिट्टी की तरफ इशारा किया और कहा—"इसने मुझे मारा।" इसको सुनकर मिसेस शर्मा की भृकुटियाँ मामूली सी तन गईं उन्होने काफी कोशिश की कि ऐसा उनके चेहरे से न दिखे। तब तक पिंकी की रोने की आवाज सुनकर छोटी भी अन्दर से बाहर आ गई थी। जब उसने यह सब सुना-देखा तो बिट्टी को एक तमाचा जड़ दिया और कहा—बदतमीज कहीं की। कहाँ से ये आदतें पड़ गईं तुझे। चल अभी मैं तुझे देखती हूँ। बिट्टी को वह अंदर घसीट कर ले जाने लगी।

यह सब देखकर मिसेस शर्मा ने अपनी सहानुभूति जताई और रोती हुई बिट्टी को अपने पास खीचते हुए छोटी से कहा—अरे-अरे ! यह क्या करती हो ?

इसका क्या कसूर है इसमें ? बच्चे तो आस-पास के वातावरण से सीखते है। बेचारे भोले-भाले होते हैं। फिर वे बिट्टी को चुप कराने लगी---चुप हो जाइये बेटे। हम मारेंगे आपकी मम्मी को।

छोटी ने खिसियानी हँसी हँसते हुए कहा---आपको मैं क्या बताऊं इसके पिता इतने सीधे हैं कि कुछ मत पूछिये। पता नहीं ये संस्कार इसे कहाँ से मिले। मेरी पूरी ससुराल में ऐसा कोई नहीं है।

बिट्टी को मार खाते देखकर सभी बच्चे चौंक कर सहम गये थे। बड़ी बा गुड्डू जो अब तक मिसेस शर्मा के पर्स को उलट-पुलट कर देख रहा था, अपने साथ इसी तरह के व्यवहार की आशंका से भाग खड़ा हुआ। उसे भागता देख रज्जू और बिट्टी को छोड़कर शेष बच्चे बाहर भाग गये।

बिट्टी जब चुप हो गई तो मिसेस शर्मा ने उपदेशक की भाँति छोटी से कहा---देखो ! बच्चे समझाने से सभी अच्छी बातें सीख जाते है। अब इस छोटी-सी पिंकी को ही देखो। मैं अगर घर में न रहूँ तो नौकरों से सारा काम करवा लेती है। उन पर पूरा ध्यान रखती है। फ्रिज में से खाना निकाल कर रखा लेती है। वैसे इसकी उम्र ही क्या है ? मुश्किल से पाँच वर्ष।

इस बीच माँ कभी मिसेस शर्मा और छोटी को बारी-बारी से देख रहीं थी। उनकी इच्छा हो रही थी कि वे भी कुछ कहें पर उन्हें लग रहा था कि बोल कर वे फिर फँस जायेंगी। वे फिर भी उनकी बातों पर रुक-रुक कर शिष्ट हँसी हँसती जाती थीं।

पर पिंकी के बारे में मिसेस शर्मा के उद्गार सुनकर छोटी और भी खिसिया गई थी। अपनी खिसियाहट को भरसक दबाकर उसने बनावटी मुस्कुराहट के साथ उनसे कहा---"आपकी पिंकी तो बहुत समझदार दिखती है।"

छोटी के मुँह से पिंकी की प्रशंसा का समर्थन सुनकर उनका चेहरा गौरवमय हो गया.। प्रतिक्रिया स्वरूप तुरन्त उन्होंने पर्स से बिस्कुट निकाला और बिट्टी को थमा दिया। बिट्टी ने फौरन आँसू पोछे और बिस्कुट खाना शुरू कर दिया।

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर---470003

थोड़ी देर मे छोटी चाय की ट्रे लेकर आ गई। चाय बाँटते हुए जब पिंकी को चाय देने की बारी आई तो मिसेस शर्मा ने अचानक कहा—"ये तो चाय पीती नहीं।" छोटी ठिठक गई। उन्होंने कहना जारी रखा—"इसकी तो शुरू से आदत है जूसेस पीने की।"

फिर उन्होने बड़ी के लड़के रज्जू की तरफ निगाह डाली, जो चाय पी रहा था और कहा—"मुझे बच्चों का चाय पीना बिल्कुल पसंद नही।"

यह सुनकर मिसेस शर्मा को अपनी ओर देखता पाकर रज्जू हड़बड़ाहट मे उठा और चाय की कप सहित अन्दर की ओर चला गया। यह बात बड़ी के अलावा छोटी और माँ को भी अखर गई। माँ ने दोनो लड़कियो के तमतमाये हुए चेहरे देखे और अनिष्ट की आशंका को टालने के उद्देश्य से कहा—"यहाँ भी इनके बच्चो को कभी चाय नही पीने देते। वो तो कभी-कभार ऐसे मौकों पर दे देते है नही तो······आगे की बात उनकी जुबान में ही अटक गई।

आगे उन्होने यह नही कहा कि ये भी जूसेस पीते है हालांकि कहना चाह रही थी। फिर बात को दूसरी ओर मोड़ते हुए उन्होने मिसेस शर्मा से पूछा कहें तो पिंकी के लिए······।

"नही-नही इसकी कोई जरूरत नही"। मिसेस शर्मा ने बीच मे ही उत्तर दिया। फिर पिंकी की तरफ देखते हुए कहा—पिंकी बेटा तो अभी-अभी आईसक्रीम खाकर आ रही है। क्यो न बेटे ?

पिंकी ने हाँ कहते हुए सिर हिलाया।

बड़ी खार सी खा गई थी। कोई बात कहने के लिए अन्दर ही अन्दर ढूँढ़ रही थी। कई क्षणो तक जब वह सफल नही हुई तो कहा—"हमारे रज्जू और गुड्डू को इनके पिता हमेशा डटकर मेहनत करने की शिक्षा देते हैं। वे अक्सर इन बच्चों को सिखाते रहते हैं कि देखो खाना-पीना उतना ही चाहिए जितना शरीर को आवश्यक है।"

इतना कहने पर उसे लगा कि वह मिसेस शर्मा को जवाब देने में काफी हद तक सफल हुई है।

बड़ी के इस जवाब का अर्थ किसी हद तक मिसेस शर्मा समझ गईं। पर विचलित हुए बिना उन्होंने कहा—हाँ तुम ठीक कहती हो पर मेरा तो कहना है कि जब अच्छा खाने मिलता है तो क्यों न खाएं। मैं तो नहीं समझती कि अच्छा खाने से किसी तरह का नुकसान होता है।

अब बड़ी की स्थिति ऐसी नहीं थी कि इस पर भी वह कोई सम्मान जनक तर्क दे पाती। ज्यादा से ज्यादा यदि होता कि वह अनाप-शनाप बोलने लगती। उसकी मनः स्थिति एकदम बिगड़ गई। उस हालत में उसने मिसेस शर्मा की हाँ में हाँ मिलाना ही ठीक समझा और मौका पाकर थोड़ी देर में अन्दर खिसक गई। अन्दर जाकर दरवाजे की बगल में बिछे पलंग पर बैठ गई। उसका मन रोने को हो रहा था।

माँ लगातार तनाव को कम करने की कोशिश में थी। इसलिए बीच-बीच में वे प्रयास करती कि बात कहीं और मुड़ जाए। एक बार फिर उन्होंने प्रयास किया और मिसेस शर्मा से औपचारिकता में पूछा—भाई साहब की तबियत कैसी रहती है? (उसका आशय मिस्टर शर्मा से था)।

यह सवाल जैसे ही माँ ने मिसेस शर्मा से किया उनके चेहरे का तेवर बिगड़ गया। वे सख्त नाराज दिखने लगीं। माँ को लगा कि जिस अनिष्ट की आशंका उन्हें लड़कियों की बातों में दिख रही थी वह उनसे खुद हो गई।

मिसेस शर्मा ने गुस्से में कहा—क्यों क्या हो सकता है उनकी तबियत को? अच्छे खासे हैं। उनका गुस्सा पूर्ववत् था।

माँ ने फिर भी स्थिति को सम्हालना चाहा—"नहीं यह बात नहीं मैं तो कह रही थी कि भाई साहब की उम्र भी अब काफी हो गई है और इस उम्र में छोटी-मोटी तकलीफें रहती ही आती हैं। अब इनको ही देखो कुछ न कुछ लगा रहता है। कभी जोड़ों में दर्द, कभी सर्दी जुकाम, जबकि अभी पचपन के हैं।"

अरघान (कविता संग्रह : 1984)

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"तबियत खराब हो उनके दुश्मनों की।" मिसेस शर्मा ने कहा। इस बात को उन्होंने इतना जोर लगा कर कहा कि हांफ गईं। अब यहाँ भले ही लोगों को नहीं मालूम पर माँ के द्वारा तबियत के बारे में पूछते ही उन्हें अपने पति को पिछले वर्ष आये दिल के दौरे की याद ताजा हो गई थी और वे उत्तेजित होकर पसीने-पसीने हो गईं थी।

माँ उनकी यह हालत देखकर घबरा गईं थी। जबकि मिसेस शर्मा द्वारा अभी-अभी कहा गया मुहावरा उनको बुरा लगा था। बावजूद इसके वे समझ नहीं पा रही थी कि वे खुद क्यों नहीं कुछ कह पा रही है जबकि मिसेस शर्मा ने तो सीधे मुहावरे का इस्तेमाल उनके लिए ही किया था। अपने ख्याल से तो माँ ने मात्र औपचारिकतावश पूछा था कि उनकी तबियत कैसी रहती है। वे बार-बार याद कर रही थी कि उन्होंने भूल से कोई गलत बात तो नहीं पूछ ली थी। पर उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वे एकदम गुमसुम हो गईं थी।

मिसेस शर्मा अब तक अपने पति को पिछले वर्ष पड़े दिल के दौरे की स्मृति से मुक्त नहीं हो पाई थी बल्कि उसमें और-और घिरती जा रही थी। उन्हे शक था कि इन लोगों को उनके बारे में और भी जानकारियाँ होगी। हो सकता है कि इन्हे उस केस की भी जानकारी हो जो उनके पति पर सी० बी० आई० की जाँच के बाद चला था। कितनी मुश्किलों में कटे थे वे दिन। पैसा न होता तो क्या वे बच पाते। इसी श्रृंखला में मिसेस शर्मा अपने अतीत को सोचती चली गईं। अचानक उन्हे लगा उनका पुराना हाई बल्डप्रेशर उफान खा रहा है। उनका बस चलता तो बीसियों गालियाँ वे इन्हे सुनाती। पर शरीर और दिमाग नियंत्रण से बाहर हो रहे थे। उन्होने वहाँ से चले जाना उचित समझा और अचानक उठते हुए गुस्से से माँ को कहा—असल में आप लोग किसी को अच्छा नहीं देख सकते मैं तो यह सोचकर आई थी कि आप लोगों की स्थिति में परिवर्तन हो गया होगा। आप लोगो की समझ तो कम-से-कम बढ़ गई होगी पर अफसोस मुझे निराशा ही हाथ लगी।

इतना कहने के बाद उन्हें कुछ अच्छा लगा। आखिर में उन्होंने कहा—अच्छा नमस्ते। फिर पिंकी की उँगली पकड़ कर बाहर निकल गईं।

माँ हतप्रभ सी उनकी बातें सुन रही थी। उन्हें इस तरह जाते हुए देखा तो पुकारा—सुनिए! सुनिए तो!!—पर मिसेस शर्मा रुकी नहीं। चलती चली गईं। जब वे कार तक पहुँची तो माँ सरपट अंदर चली गईं। उन्हें दहशत थी कि मोहल्ले के लोगों ने यह सब देख-सुन न लिया हो।

जैसे ही वे अन्दर के कमरे में दाखिल हुईं बड़ी जो बैठे-बैठे बाहर की बातें सुनती रही थी उन पर बरस पड़ी और उनकी नकल उतारते हुए चिल्लाकर कहा—सुनिए! सुनिए तो!! लगी थी न तुम्हारी जो बार-बार उसे पुकार रही थी। अरे उसे तो पचासों बातें सुनानी थी। तुम तो उसका भी जवाब नहीं दे पाई जब उसने चालाकी से पिता जी को दुश्मन कह डाला।

माँ ने बड़ी की आपत्ति को अन्दर-ही-अन्दर स्वीकारा पर प्रत्यक्ष उसका जवाब दिया—वह तो एक मुहावरा कहा था उन्होंने। इसमें नाराज होने की क्या बात थी। और बुरा कह भी दिया तो उनका मुँह खराब होगा अपना क्या।

माँ यह कह ही रही थी कि मझली आ गई। उसने बड़ी और माँ की बातचीत सुनी तो उसे अपनी खीज निकालने का मौका मिल गया। माँ को ही लक्ष्य बनाते हुए उसने कहा—हाँ हमारा क्या हम तो सब सह लेते हैं। तभी तो वह कैसी खिल्ली उड़ा रही थी गुड्डो के पिताजी की कि 'माऽऽऽस्टर' हैं। अरे मास्टर ही हैं कोई तुम्हारे पति जैसे चोर तो नहीं है। वे तो कम-से-कम बच्चों को शिक्षा ही देते है किसी की खिल्ली तो नहीं उड़ाते। कमीनी कहीं की।

छोटी भी तब तक उस कमरे में आ गई थी। मझली ने जैसे ही अपनी बात पूरी की माँ को कुछ कहने का मौका दिये बगैर वह भी उन पर उबल पड़ी—तुम तो बड़ी हो तुमसे कुछ नहीं कहते बना जब वो हमें शिक्षा दे रही थी कि

अरधान (कविता संग्रह : 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सिखाने से बच्चे सभी बातें सीख जाते हैं। जैसे हम तो अपने बच्चो को कुकर्म सिखाते हैं। उनकी लडकी तो पाँच साल की उमर में ही पच्चीस साल की लडकियों जैसी समझदार हो गई है। देखना अभी तो वो अपना खसम भी इसी उम्र में ढूँढ लेगी। कुतिया ऐसी बातें कर रही थी जैसे कि हम उनको समझते नही। फिर जानते हुए कि वह झूठ कह रही है उसने आगे कहा—"वह तो माँ तुम्हारी वजह से मैने कुछ नही कहा। नही तो वो सुनाती कि *उसकी सात पुश्तों को याद रहता।" वह बहुत उत्तेजित हो गई थी।*

माँ तो मिसेस शर्मा के चले जाने से वैसे ही हडबडा गई थी। फिर इन लडकियों ने उनकी हडबड़ाहट को गुस्से में बदलना शुरू कर दिया था।

छोटी की बात खत्म भी नही हो पाई थी कि बड़ी बोल पड़ी—उसने बहनो को सम्बोधित कर कहा—अरे सुनो तो क्या कह रही थी वो शरीफ औरत कि उसके बच्चे जूसेस पीते हैं। अरे मैं कहती हूँ उसी में नहाएं-धोएं हमें क्यों सुना रही थी। रज्जू कितना डर गया था जब उसने कहा कि मुझे तो बच्चो का चाय पीना बिल्कुल पसन्द नही। बेचारा चैन से चाय भी नही पी पाया। मैं तो कोसती हूँ उसके बच्चे एक दिन चाय पीने को भी मोहताज रहेंगे।

छोटी ने कहा—'अरे दीदी माँ से पता नही कैसे सुना गया। कह क्या रही थी बच्चे वातावरण से सीखते है।' जैसे हमारे घर में तो हर समय लोग एक दूसरे से लडते है। माँ तुम तो उस समय भी कुछ नही बोली जब उसने कहा कि अच्छा खाना चाहिए। हम लोग जैसा भी खाएँ उसके घर भीख माँगने तो नही जाते। उनका लडका तो पढ़ता है तो खाना भूल जाता है और अपना राजू तो पढ़ता नही सिर्फ खाता रहता है। इतना कहने के बाद उसकी आँखों में आँसू आ गये। जिसको देखकर मझली ने कहा—अरे ये बड़े लोग हैं। किसी को कुछ कहते हुए सोचते थोड़ी ही हैं कि उसे कैसा लग रहा है। बल्कि जान-बूझ कर व्यंग करते हैं।

माँ इन लड़कियों की बातों से अब तक पूरी तरह गुस्से में आ गई थीं फिर भी चुप थी। वे नहीं चाहती थीं कि इतने दिनों बाद यहाँ आई इन लड़कियों को वे कुछ सुनाएँ। उनकी ममता ही अभी तक उनको रोके हुए थी वरना लड़कियों ने सभी बातों के लिए बेमतलब उन्हें जिम्मेदार ठहराया था।

कुछ क्षणों बाद छोटी ने आँसू पोंछते हुए कहा—माँ के घर आओ तो हमेशा किसी न किसी कारण से मन खराब हो ही जाता है।

यह सुनकर माँ का सब्र टूट गया। उन्होंने पूछते हुए कहा—क्यों बेईमानी की बातें करती हो तुम लोग। क्या मेरी वजह से तुम लोगों का मन खराब होता है? अब आज वे आ ही गईं तो मैं उन्हें भगा देती? फिर सभी बातों के लिए मुझे क्यों जिम्मेदार ठहराती हो?

वे चीखने लगी थीं—जब वे हम सब को जली-कटी सुना रही थीं तब तुम लोगों के मुँह क्यों बन्द थे। तुम लोग भी अब बड़ी हो, बाल-बच्चेदार हो। जिम्मेदार हो गई हो। उस वक्त क्यों नहीं खुले तुम्हारे मुँह। मैं नहीं कह पाई कुछ तो तुम लोग ही कह लेतीं। ऐसी कौन सी बात थी जो तुम लोगों को रोके रही। बताओ? बोलो?—माँ गुस्से में काँप रही थीं।

कमरा एकदम शान्त हो गया था। लड़कियाँ माँ की हालत देखकर डर गई थीं। माँ का गुस्सा उनकी समझ में आ गया था। उनसे माँ को कुछ कहते नहीं बन रहा था। वे चुपचाप सिर झुकाए खड़ी थीं।

तभी बाहर से बच्चों ने अन्दर झाँका और मिसेस शर्मा को न पाकर दौड़ते हुए अन्दर चले आए।

□ □

[illegible] 1981)
अरघान (कविता संग्रह : 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

खाना-पूर्ति

कोई अठारह-उन्नीस साल की उम्र का था नरबद। तभी से उसका बाबू परेशान रहने लगा था कि उसे किसी काम से लगा दूं। सिर्फ आठवीं जमात तक पढ पाया था वह। फिर बाबू हिम्मत हार गये थे और हमेशा उसको किसी काम में लगाने की चिन्ता मे रहे आते। वे सोचते अपनी तो कट गई। यह जो ड्राईवरी है वह भी खत्म होने वाली है। बस थोड़े ही दिन हैं रिटायर हो जाने के लिये। उसके पहले ही नरबद को काम पर लगा देना है। कई दिनों इसी गुंताड़े मे रहे आने के बाद एक दिन उन्होने अपने साहब से प्रार्थना की तो साहब नरबद को ड्राईवरी में लगाने के लिए राजी हो गये।

उस दिन खुशी-खुशी वे घर लौटे और यह बात नरबद को बताई। ड्राईवरी वे नरबद को तब तक सिखा चुके थे। अब उन्होंने एक दिन नरबद को साहब की जीप के पास ले जाकर बताया कि ड्राईवरी के साथ-साथ कल-पुर्जों की जानकारी भी जरूरी होती हैं। इसलिए ठीक से जान लेना चाहिये कि कहाँ क्या है। फिर उन्होने नरबद को तमाम पुर्जों की जानकारी दी और आखिर मे ये भी बताया कि साहबों के साथ गाडी चलाने की तमीज कैसी होती है।

नरबद सारी बातें जिज्ञासा से सुनता और अपनी समझ के मुताबिक सममता रहा।

जब बाबू को इत्मीनान हो गया कि नरबद सब कुछ समझ गया है तो दूसरे रोज अपने सिंचाई विभाग के साहब के पास ले जाकर नरबद को खड़ा कर दिया और गिड़गिड़ाते हुए कहा—"साहब ये है मेरा लड़का नरबद। इसको अपने साथ रखकर मैंने ड्राईवरी का पूरा काम सिखा दिया है। अब ये पक्का ड्राइवर है साहब। आपने कहा था सो इसको ले आया हूँ। अब जैसी आप आज्ञा करें हुजूर।"

साहब ने घूर कर देखा था नरबद को। उस समय वह हंस रहा था। नौकरी पा जायेगा इस खुशी में फूला नहीं समा रहा था।

"क्या ऐसे ही हसते रहते हो ?"—साहब ने पूछा। उनकी भृकुटी तन गई थी। बाबू ने तुरन्त नरबद की ओर देखकर उसे कुहनी मारी और उसने हंसना बन्द कर दिया। एक मिनट बाद जब साहब ने उसे हंसते नहीं देखा तो मुस्कुरा दिये और बाबू से कहा—"ये अभी बहुत छोटा है। इसकी आदतें भी मुझे ठीक नहीं दिखती। फिर भी तुम्हारा लड़का है इसलिए रख लूंगा। कल से इसे भेज देना।"

बाबू ने तब साहब को लाखों-लाख दुआएँ दीं और नरबद को लेकर चले आये।

नरबद थोड़ी दहशत में आ गया था। जिस पर बाबू ने भी उसे बहुत डांटा और कहा—"बेवकूफों की तरह क्यों हंस रहा था वहाँ ? क्या साहब तुझे जोकर नजर आ रहे थे ?"

नरबद की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि हंसने में क्या बुराई है। वह चाह रहा था कि बाबू से पूछे पर उन्हें नाराज देखकर वह चुप ही रहा।

दूसरे दिन इच्छा नहीं हो रही थी साहब के घर जाने की। बाबू ने प्यार से समझा बुझाकर और सभी हिदायतें देकर उसे भेजा।

जनपद का आदमी (कविता संग्रह : 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

बहुत डरते हुए सुबह-सुबह उसने साहब के बंगले पर दस्तक दी। नौकरानी ने आकर बताया कि साहब सो रहे हैं। थोड़ी देर बैठो और वह सीढ़ियों पर बैठ गया। अपने बाबू के साथ पच्चीसों बार पहले भी नरबद यहाँ आया था। पर तब उसे यहाँ फूल-पौधे और उड़ती हुई तितलियाँ दिखती थी। जिन्हें अक्सर वह पकड़ने लगता तो बाबू झिड़क देते थे। पर वह नहीं मानता फिर पकड़ने के लिए दौड़ जाता। बाबू कहते साहब मारेंगे तब भी उसे डर नहीं लगता। पर अब कितना डर लग रहा है। कल तक जो खुशी जीप चलाने की उसके अन्दर थी वह भी गायब हो गई थी। बगीचे के फूल-पौधे और तितलियाँ सब कुछ पहले जैसे थे पर उसे कुछ नहीं दिख रहा था। उसके सामने केवल साहब का चेहरा और जीप ही ऐसी थी जो दिख रही थी। एक बार उसकी इच्छा हुई कि भाग जाए। पर तुरन्त उसे अपने बूढ़े बाबू नजर आए। उसे याद आया कल कैसी जी हुजूरी ये कर रहे थे साहब के सामने मेरे लिए। उनकी याद आते ही वह भाग जाने की बात भूल गया और बेसब्री से साहब के बाहर आने का इंतजार करने लगा।

साहब जब बाहर आये तो उसने अपने बाबू की तरह सलाम किया उनको। एक बार ऊपर से नीचे तक साहब ने उसे देखा फिर बिना कोई दूसरी बात किये उससे जीप के कल-पुर्जों और उसे चलाने के तरीके की पूछताछ की। बाबू के बताए अनुसार उसने ठीक-ठीक जवाब दे दिया। साहब संतुष्ट दिखे। फिर उन्होंने कहा—"तुम्हें मस्टर रोल में रख रहा हूँ। रोज के ढाई रुपये मिलेंगे।"

यह सुनकर उसे बहुत खुशी हुई। पर उसने अपने चेहरे पर नहीं आने दी। उसे डर लग रहा था कि साहब के सामने कहीं कल जैसा न हो जाए। उस जमाने में बाबू से कभी अठन्नी तक नहीं मिलती थी और अब तो रोज ढाई रुपये मिलेंगे। यह बहुत बड़ी खुशी की बात थी उसके लिए। पर साहब के सामने खुश होने का मतलब वह जान गया था।

इस तरह नौकरी की शुरूआत हुई थी नरवद की। उस समय को गये बरसों हो गये। कुछ दिनों बाद उसके साथियों ने बताया था कि मस्टर रोल से रेगुलर हो जाने के बाद कोई तकलीफ नहीं होती। इसलिये दूसरे ड्राइवरों के समान उसने भी काम करना शुरू कर दिया था। साहबों के घर की सब्जी लाने में या खाना बनाने में और बच्चों को नहलाने-धुलाने या इसी तरह के सैकड़ों काम करने में शुरू में उसे अटपटा और खराब लगता था। पर रहते-रहते आदत पड़ गई। पर कभी-कभी अति भी हो जाती थी।

कोई चौबे साहब आये थे उन दिनों। एक दिन दौरे से लौटने के बाद जब साहब के बंगले पर उसने गाड़ी खड़ी की तो रात के साढ़े दस बजे थे। वह बहुत थका हुआ था। कई दिनों के बाद घर लौट रहा था इसलिए खुश भी था। साहब के हाथ में जैसे ही उसने जीप की चाबी थमाई तो उन्होंने बड़े प्यार से कहा—"नरवद जरा पिताजी की कमर दबा दो फिर चले जाना।"

यह सुनकर उसकी खुशी लुप्त हो गई। शरीर में थकान थी ही साहब की आज्ञा सुनकर उसे लगा मानो वह लाखों मील जीप चलाकर आया है। वह सोचने लगा कि साहब को कैसे कहे कि थक गया हूँ और घर जाना चाहता हूँ। इतने में साहब ने भुँझलाकर फिर कहा—"नरवद तुमने मेरी बात सुनी ?"

"जी······जी हाँ।"—वह घबराया और साहब के बूढ़े बाप की कमर दबाने अन्दर चला गया। वह इतना थका था कि उसके हाथ-पैर काम नहीं कर रहे थे। कुछ देर तो दबाता रहा, जब उसे लगा कि अब हाथों का जोर जवाब दे गया है तो उसने साहब के पिताजी से कहा—"मैं पेशाब कर के आता हूँ"। और बाहर आकर जितनी तेजी से हो सकता था घर की तरफ भागा। घर पहुँच कर ही उसने दम ली।

दूसरे दिन वह डरते-डरते साहब के घर पहुँचा और हमेशा की तरह जीप साफ करने लगा। पता नहीं कब चौबे साहब आ गये और पचासों गालियाँ कल की हरकत के लिए उसे सुनाई। वह सिर झुकाये चुपचाप सुनता रहा। फिर भी साहब का गुस्सा ठंडा नहीं हुआ। उन्होंने उसे भगा दिया और कभी

जनपद का कावहू (कविता संग्रह : 1981)
परधान (कविता संग्रह : 1984)
गोरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

भी लौट के ना आने की सख्त हिदायत दी। वह चुपचाप उदास होकर वहाँ से चल पड़ा।

घर आकर जब यह घटना उसने बाबू को बताई तो वे भी उसी पर आग-बबूला हो गये और गुस्से मे कहा—"कमीने तुझे समझ कब आयेगी। जागर नही चलायेगा, काम नही करेगा, तो कौन तुझे अपने पास रखेगा। फिर तू कौन सा ऐसा लाट-गवर्नर है कि साहवों के काम के लिए मना कर दे।"

पता नही इसी प्रकार की कितनी बातें बाबू ने उससे कही। जब नरबद ने कहा कि उसने जीप चलाने से तो मना नही किया, साहब के बाप की कमर वह क्यों दबाए? तो बाबू तो एकदम मारने उठ गये और बोले—"हरामखोर मैंने हमेशा तुझे कहा कि साहब, साहब होता है और उसका हर काम तेरी ड्यूटी है।"

बाबू इतना गरम हो गये थे कि उसने चुप रहना ही ठीक समझा और उनकी बड़बडाहट और गालियाँ सुनता रहा। थोड़ी देर बाद बाबू शान्त हो गये फिर जबर्दस्ती नरबद को साहब के पास लिवा ले गये। चौबे साहब के सामने हाथ जोड खड़े हो गये और हजारों बार प्रार्थना की कि वे नरबद को फिर से रख लें।

चौबे साहब बड़ी देर तक सोचते रहे। ये साले ड्राइवरों की जात ही ऐसी होती है। कल अगर दूसरा आयेगा तो हो सकता है वह इससे ज्यादा बदमाश निकले। इसलिए इसे रख ही लेना चाहिये। वैसे भी इसने ज्यादा बडा अपराध तो किया नही है। कुछ देर बाद वे बाबू से बोले—"देखो तुम आए हो और अपना दुःख बता रहे हो तो मैं तुम्हारी जमानत पर रख लेता हूँ। नही तो आजकल नौकरी के लिए अच्छे-अच्छे चक्कर लगाते हैं। पर इसे समझा दो कि तुमने कैसे जीवन भर काम किया। वह सब इसे भी तो सीखना चाहिये।"

नरबद के साथ के ड्राइवरो को जब इस घटना की खबर लगी तो उन लोगो ने भी नरबद को समझाया कि जब तक रेगुलर नही हो जाते ये सब तो

करना ही पड़ेगा। उसे पहले ही बाबू का साहबों के बच्चों की सेवा करना अच्छा नहीं लगता था। अपने लिए लोगों की इस तरह की राय उसे खराब लगी पर आगे से उसने इस तरह के कामों के लिये टाला-मटोली करना बन्द कर दिया। उसने सोचा चलो इतने दिन कट गये और जी कड़ा करके रेगुलर होने तक काट लेंगे।

पर आज रेगुलर हुए भी तो कितने बरस हो गये। बाबू भी मर गये। नरबद खुद बाल-बच्चों वाला हो गया और वैसे कामों में कमी नहीं आई। बस पहले ये होता था कि साहब लोग फटकार के निकाल देने की धमकी देकर काम करा लेते थे। अब कभी-कभी प्यार से भी बोलते हैं। अभी भी नरबद देखता है सरकारी ड्यूटी के टाईम के अलावा साहबों को ड्राइवरों का ज्यादा से ज्यादा समय चाहिये।

एक हफ्ता पहले की ही तो बात है। कमिश्नर साहब की लड़की की शादी थी। पूरे सम्भाग के छोटे-बड़े साहबों की जीपें शादी में लगी थी। नरबद भी अपने साहब की जीप के साथ पूरे वक्त कमिश्नर साहब के बंगले में रहता। चार दिन गुजर गये थे वहाँ रोज की हाजिरी बजाते और काम करते। वहीं साहब के बंगले में रहना, खाना, सोना चल रहा था। घर जाने का तो वक्त ही नहीं मिल पा रहा था। उस दिन अचानक नरबद का लड़का आया और बताया कि छोटी बहन को तेज बुखार चढ़ा है और अम्मा घर में बुला रहीं हैं। यह सुनकर विचलित हो गया नरबद। उसने बेटे से कहा—"तू चल मैं अभी साहब से कह के आता हूँ।" लड़का चला गया। वह सोचता रहा साहब से किस मौके पर कहे कि घर जाना है। उसका किसी काम में मन नहीं लग रहा था। रात साढ़े ग्यारह बजे उसने कमिश्नर साहब से कहा—"साहब लड़की की तबियत खराब है, अभी लड़का बता गया है। मुझे घर जाना है।"

कमिश्नर साहब ने यह सुनकर कहा—"ठहरो अभी पूछ के बताता हूँ कि और कुछ काम तो नहीं है।" और वे अन्दर चले गये। थोड़ी देर बाद उनकी बीबी बाहर आईं।

... का काव्य ... (कविता संग्रह : 1981)
प्रयान (कविता संग्रह : 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

"क्या बात है नरबद घर क्यों जाना चाहते हो ?"—उन्होंने पूछा।

"मालकिन बिटिया की तबियत खराब है इसलिए चिन्ता लगी है एक बार उसे देख आता तो अच्छा रहता।"—नरबद ने उनसे कहा।

कमिश्नर की बीबी थोड़ी देर तक खड़ी सोचती रही फिर कहा—"तुम तो यहीं रहो। अभी किसी भी वक्त कोई काम आ सकता है। मैं किसी डाक्टर को फोन कर देती हूँ। वे तुम्हारी लड़की को देख आयेंगे।" नरबद कुछ कहता इसके पहले ही वे अंदर चली गईं।

नरबद बड़ी असमंजस की स्थिति में फँस गया। अब कैसे कहे मालकिन से कि बिटिया को अपनी आँखों से देखे बगैर उसे शान्ति नहीं मिलेगी। पर थोड़ी ही देर में वह दूसरी तरह सोचने लगा कि चलो मैं ही जाकर क्या करूँगा, डाक्टर तो पहुँच ही जायेंगे। इलाज तो वे ही करेंगे। पर बाद में उसे लगने लगा कि मजबूरी में वह ऐसा सोच रहा था। इच्छा तो उसकी लगातार हो रही है कि वह लड़की को देख आये। पर अब अगर वह फिर मालकिन से कहेगा तो वे सोचेंगी उन पर विश्वास नहीं है। यह सब सोचकर वह अपनी इच्छा को दबा गया।

रात किसी पहर वह दो बार मेहमानों को लेने स्टेशन गया। फिर जीप पर ही पड़ा-पड़ा जागता रहा। हर बार वह कोशिश करता कि भूल जायें। पर लड़की की चिंता उसे बार-बार घेर लेती।

बड़ी मुश्किल से सुबह हुई। सुबह वह लगातार इस ताक में था कि कमिश्नर साहब या उनकी बीबी एक बार दिख जाएँ। पर लगता था जैसे वे बंगले ही में नहीं है। वह फिर से काम में लग गया था। जब-तब भीतर बंगले से कोई भी हरकारा आता और उसे कौन सा काम करना है बता जाता। दोपहर तक यही चलता रहा।

जब एक बार उसे मालकिन दिखी तो उसने कहना चाहा कि अब उसे घर जाने दिया जाये। पर उन्होंने एक नजर नरबद पर डाली और सरपट अन्दर चली गईं। पाँच मिनिट बाद बंगले की नौकरानी उसके लिये खाना लेकर आ गई।

खाना खाते वक्त उसने देखा कई बार मालकिन उसके सामने से निकली। वह फटाफट बेमन से खाना खा रहा था और सोच रहा था कि मालकिन कहीं बाहर न चली जाएं। खाना खाते वक्त बोलता तो वे नाराज़ हो जातीं। शायद डाट देतीं कि पहले चैन से खाना तो खा लो।

खाना खाने के बाद जब एक बार मालकिन दिखीं तो उसने उनके सामने अपनी याचना दोहराई—"मालकिन वो बिटिया की तबियत······वह इतना बोल ही पाया था कि उन्होंने बीच में ही पूछा—"तुमने खाना खा लिया ?"

उसने कहा—'हाँ'।

"फिर अब घर क्यों जाना चाहते हो ?" मालकिन ने पूछा।

वह गुस्से से भर गया था फिर भी गिड़गिड़ाते हुए कहा—वो बिटिया···।

मालकिन ने फौरन बीच में टोका—"उसके लिए तो डाक्टर को फोन कर दिया था। वह ठीक हो गई होगी।"

इतना कहकर वे भीतर चली गई। नरबद देखता ही रह गया। इच्छा हुई चिल्लाकर कहे—"तुम्हारी लड़की की शादी हो रही है तो हमारी लड़की मर भी जाए तो नहीं जा सकते" जीप की चाबी उनके मुँह पर दे मारे और भाग जाए। पर वह जानता था उसका नतीजा क्या होगा। वह अन्दर ही अन्दर घुटता रहा। रह-रह कर किसी बुरे ख्याल में उसका मन फँस जाता। लड़की को लेकर शकाएं मन में उठतीं। अपने आपको कहकर सान्त्वना देता कि शायद डाक्टर पहुँच गये होंगे तो ठीक हो गई होगी। पर खुद अपने आँखों से देखने की इच्छा बार-बार उठती और ऐसा होते ही फिर मालकिन की झिड़की याद आ जाती।

ले-देकर शाम को जब थोड़ी देर के लिए नरबद को घर जाने मिला तो घर पर पत्नी उदास मिली। उसने पत्नी से पूछा—बिटिया की तबियत कैसी है ?

उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ उसकी आँखों में आँसू आ गये। वह [illegible] और भागता हुआ अन्दर बिटिया के पास

[illegible] (कविता संग्रह : 1981)
प्रयाण (कविता संग्रह : 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

गया। उसने देखा उसकी छोटी सी लड़की घिसट रही थी। उसके दोनों पैर न जाने कैसे लुंज पड़ गये थे। उसने बिटिया को उठा लिया। बड़ी देर तक उसके पैरों को छूकर देखता रहा। पीछे पत्नी खड़ी हुई सिसकियाँ ले रही थी। उसको समझ मे नही आया क्या करे। उसने पत्नी से फिर पूछा—डाक्टर साहब आये थे क्या ?

पत्नी ने नही मे सिर हिला दिया।

उसने एक मोटी-सी गाली कमिश्नर साहब की बीवी के लिये निकाली। "कमीनी ने मुझसे झूठ कहा था कि डाक्टर को फोन कर दिया है।" पत्नी की सिसकियों से उसका ध्यान फिर से बेटी की ओर गया। वह बड़बड़ाता-सा उठा और बेटी को लेकर डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने जब लड़की को देखा तो कहा—इसे पोलियो हो गया है। अब ये चल नही सकेगी। यह सुनकर उसके होश गुम हो गये। डाक्टर के सामने वह गिडगिड़ाने लगा कि साहब जैसे हो इसके पैर ठीक कर दें। चाहे उसका सब कुछ ले लें। पर डाक्टर ने अपनी लाचारगी बताई।

वह पागल-सा हो गया। अब चाहे वह कही भी रहे उसे अपनी घिसटती हुई लड़की दिखती। वह आगे की सोच जाता कि यह जब बड़ी होकर भी ऐसी ही घिसटेगी तो वह कैसे देख पायेगा उसे। फिर जब थोड़ा होश मे आता तो दूसरे डाक्टरो के पास उसे ले जाता। पर हर जगह उसे निराशा हाथ में आती। रह-रह कर यही बात पछतावे के साथ उसके दिल मे आती कि यदि उस रात वह पहुँच गया होता तो लडकी ठीक हो गई होती। क्यो नही वह झगड के आ गया उस दिन। अपने को वह कोसता रहता। गाली देता खुद को कि कितना डरपोक है वह।

इस घटना के बाद बहुत दिनो तक नरबद को किसी ने बोलते नही देखा। उसे ऐसा सदमा लग गया था कि वह हमेशा चुप रहा आता। अपने साथी ड्राइवरो के साथ बैठकर बातें करना, जिनमें अधिकतर साहबो की गालियाँ होतीं

थी, भी उसने बन्द कर दिया था। ड्यूटी के वक्त हमेशा जीप पर ही पड़ा रहता। साहब आते, जहाँ जाने के लिए कहते, यन्त्रवत वह उस दिशा में जीप चलाने लगता।

कई बार आफिस पहुँचने पर दूसरे साहबों के ड्राइवर नरबद को पहले की तरह पन्नू के चाय के ठेले पर ले जाने का प्रयास करते। पर लाख कोशिशों के बाद भी वह नहीं जाता। वे लोग अक्सर वहाँ बैठकर हँसी-मजाक किया करते और मुख्य रूप से साहबों की बातें होतीं कि कौन साहब कैसा है और किसकी बीबी बदमाश है और बड़े साहब को पटाने के लिये छोटे साहब ने क्या किया आदि। इसमें विशेष जानकारियाँ हमेशा नरबद के पास रहतीं। वह साहबों को सबसे अधिक गालियाँ देता था। इसलिए खासतौर से सब उसे बहुत पसंद करते थे और खुश हो लिया करते थे। लेकिन पिछले दिनों से नरबद को उदास देखकर वे भी गुमसुम रहे आते। यह तो सब जानते ही थे कि नरबद चुप क्यों रहता है।

कुछ समय गुजरने के बाद एक दिन ड्राइवरों ने नरबद को पन्नू की दुकान में ले जाने में सफलता हासिल कर ली। वहाँ पर भी वह चुपचाप बैठा रहा। उन लोगों ने चाय मँगाई और उसी वक्त नरबद के हाथ में उस दिन का अखबार आ गया। अखबार तो वह पहले भी पढ़ता था।

उसने पढ़ा ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में छपा था "सरकारी अधिकारियों को सरकारी वाहनों के निजी इस्तेमाल पर दण्डित किया जायेगा।"

इस लाइन को उसने तीन-चार बार पढ़ा। जब उसे यकीन हो गया कि यही लिखा है तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने सोचा आज जो उसकी हालत है वह इसीलिए है न कि सरकारी काम के घंटों के बाद भी उसे साहबों की ड्यूटी करनी पड़ती है। और न करो तो झेलो हजार दिक्कतें और कष्ट। और उनकी ही करते रहो तो अपना घर बिगड़ता है। वह पूरे समाचार को पढ़ गया और अचानक उसके मुँह से निकला—"अब मजा आयेगा। अब साहबों की खैर नहीं।"

काव्य (कविता संग्रह : 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
... 4, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

दूसरे ड्राइवर नरबद को खुश देखकर आश्चर्य चकित हुए। उन लोगों नें एक साथ पूछा—क्यों नरबद क्या लिखा है अखबार में ?

जवाब में नरबद ने अखबार उन लोगों को दे दिया और गुनगुनाते हुए चाय पीने लगा। सब ड्राइवर अखबार पर टूट पड़े।

नरबद उल्लास में चाय पी रहा था और गुनगुनाए जा रहा था। थोडी देर बाद जब वह संयत हुआ तो उसे आश्चर्य हुआ कि वे लोग शांत क्यों हैं ? उसने उन लोगों को देखा वे लोग अखबार पढ़ चुके थे और उदास दिख रहे थें। कोई किसी से बात नही कर रहा था। सब चुपचाप चाय पी रहे थे।

उसने उन लोगों से सवाल किया—क्यो तुम लोगो को खुशी नही हुई यह पढ़कर ?

कोई फिर भी कुछ नही बोला।

उसने फिर चिढ़कर पूछा—"मैं कहता हूँ तुम लोग कुछ बोलते क्यों नही हो। क्या ये पढकर तुम लोगों को खुशी नही हुई कि साहबो की ऐसी-तैसी होगी ? वह इतना कहते-कहते पसीने से नहा गया। उसने अपने साथियो के बारे में सोचा साले सब नीच हैं। एक बुजुर्ग ड्राइवर जिसे सब उस्ताद कहते थे उसका कन्धा पकड़ा और चलने के लिए उसे उठाने लगा। इस पर नरबद और ताव खा गया। उसे लगा ये लोग मुझे गधा समझ रहे है। उसने उस्ताद की कालर पकड़ ली और कहा—मैं पूछता हूँ तुम लोग चुप क्यों हो उस्ताद ?

उस्ताद ने अपना कालर छुड़ाते हुए बहुत धीरे से कहा—"नरबद तुम बिटिया के दुःख में पगला गये हो। अखबार मे दोगली बात छपी है। पिछली बातें याद करो। कितनी बातें छपी थी अखबारो में जो अखबारो तक ही रही। उनका कुछ नही हुआ। पिछली बार छपा था कि एक्सीडेंटों में अगर हमारे पैर-हाथ बेकार हो जाएँ तो हमें नौकरी से हटाया नही जायेगा। दूसरा काम देकर पूरी तनख्वाह दी जायेगी। रज्जू की टाँग टूट गई थी पर देखो उसे

पेंशन पर बिठाल दिया गया। फिर साहबों के साथ सख्ती की बात इतनी आसान नहीं जितनी तुम समझते हो।

"पर साहबों को सबक सिखाने की बात तो पहली बार छपी है"—नरबद जोश में बोला।

उस्ताद ने एक बार फिर कहा—पर साहबों का अभी तो कुछ नहीं होने वाला। यह नहीं है कि ये लोग भुगतेंगे नहीं। उसका भी टैम आयेगा।

पर नरबद तो इतना सुनकर तैश में आ चुका था। उसका चेहरा गुस्से से लाल हो गया। उसने उस्ताद को एक ओर ढकेलते हुए कहा—"तुम सब गधे हो साहबों के चमचे हो। उनकी गाँड-गुलामी भर करना जानते हो। तुमसे तो बात करना बेकार है।"

इसी तरह की पचासों बातें और गालियाँ सुनाते हुए वह वहाँ से चल दिया। आकर जीप पर बैठ गया। उसका दिमाग भन्नाया हुआ था। वह सोच रहा था हद होती है किसी बात की। हमारे लिए अच्छी खबर है, फिर भी भाई लोग खुश नहीं। सोचते होंगे मैं किसी बात के लिए उनका साथ चाहता हूँ। सब नीच हैं साले। साहबों की जी हुजूरी करते-करते मट्टर हो गये हैं। इनके दिमागों में जरा सी बात घुसती नहीं। इनको तो तभी पता चलेगा जब इनके बच्चे भी लूले-लगंड़े हो जायेंगे। अभी तो साले खूब मस्ती मार रहे हैं। वह लगातार उनको कोसता रहा।

न जाने कब उसके साहब आ गये और उसे कार्पोरेशन चलने का आदेश देकर जीप में बैठ गये। इतनी तिलमिलाहट के बाद भी वह जीप चलाने लगा। उसकी जीप बहक रही थी। थोडी ही देर में कई एक्सीडेंट होते-होते बचे। बगल में बैठे उसके साहब का तेवर यह देखकर बिगड़ गया। उन्होंने झिड़ककर कहा— "पागल हो गये हो क्या तुम्हें दिखता नहीं।"

पागल हो जाने वाली बात अभी-अभी उसने अपने उस्ताद से सुनी थी। साहब से मुँह से भी वही सुनकर उसकी तिलमिलाहट और बढ़ गयी। उसने

... का काव्य ... (कविता संग्रह : 1981)
... (कविता संग्रह : 1984)
... सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कहा—"अब तो साहब थोड़ा बहुत दिखने लगा है पहले तो कुछ भी नहीं दिखता था।"

साहब के चेहरे का तनाव और बढ़ गया—"आजकल बहुत बोलते हो"—उन्होंने गुस्से में कहा।

"यह भी तो अभी शुरू किया है साहब"—नरबद ने जवाब दिया। साहब का गुस्सा देखकर वह थोड़ा खुश हो गया था।

नरबद को इस तरह बात करते देख साहब ने सोचा अभी इससे बहस करने में अपनी इज्जत जा सकती है। इसलिए वे चुप हो गये और एवज में एक दीर्घ हुँकार भरी।

पर नरबद चाह रहा था कि वे कुछ और बोलें। वह सोच रहा था कि जो कुछ होना है जल्दी हो। अब और इन्तजार नहीं होता। साहब के चुप हो जाने पर वह यह नहीं समझ रहा था कि वे डर गये हैं। वह जानता है ये लोग हमेशा अपने समय से जब कुछ करते हैं? पर अब मैं मौका नहीं दूँगा उस समय के आ जाने का। एकाध को तो सबक सिखा ही दूँगा। अगर सब उसका साथ दें तो इनको तो वह अच्छे से देख लें। मगर सब डरपोक और चूतिया हैं। अपनी करनी का भुगतेंगे। पर मैं अब शान्त नहीं बैठूंगा। भले हो मुझे किसी का साथ न मिले।......

वह कई तरह की योजनाएँ बनाता रहा और पता नहीं कब कार्पोरेशन आ गया।

वह दिन भी नरबद का ऐसा गया जिसने उसके साथ जले में नमक छिड़क देने वाला काम किया। उस दिन शाम छः बजे जब वह जीप खड़ी कर जाने लगा तो साहब ने कहा—"नरबद तुम अभी जाना नहीं।"

उसने पूछा—क्यों साहब?

साहब दोपहर के उसके व्यवहार से सतर्क थे। इसलिये प्रेम से कहा—"आज हमारे बच्चे का जन्म दिन है कुछ लोग आयेंगे। शायद रात हो जावे और उनको छोड़ने जाना पड़े। तुम खाना भी यहीं खा लेना।"

उसने पहली बार गौर देकर सोचा ये अफसर कितनी आसानी से सरकारी गाड़ियों का इस्तेमाल अपने कामों के लिए करते हैं जैसे इनके बाप की हो।

साहब के चेहरे पर विवशता सी छायी थी। उसने जैसे ही हामी भरी उनके चेहरे पर प्रसन्नता झलकने लगी।

वह रात दो बजे तक वहाँ रहा फिर घर चला आया। सुबह जब वह साहब के घर पहुँचा तो उनकी बीबी उसका इन्तजार ही कर रही थी। उसे देखते ही उन्होंने कहा—"नरबद गैस की टंकी रात में खाली हो गयी थी। तुम जाकर भरी टंकी ले आओ। उसने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। खाली टंकी जीप मे डाली। उसने तुरन्त ही एक योजना बनाई। उसे याद आया साहब जीप की लॉग-बुक में एडवांस में दस्तखत कर देते हैं। उसने लॉग-बुक निकाली। उसमें काफी खाली जगह थी। उसने एक बार चारो तरफ देखा कोई नही था। उसने तुरन्त साहब के दस्तखत के ऊपर गैस की टंकी ले जाने वाली बात को और अंदाज से दुकान तक की दूरी को लिखा और चल दिया। अपनी सफलता को नजदीक देखकर वह काँप रहा था।

इतने दिनों से वह देख रहा था कि राइट-टाउन थाने मे कई गाड़ियाँ जब्त हुई थी और इत्तफाक से थाना रास्ते मे पड़ता था।

वह बहुत अधीर हो गया था। संयोग ऐसा था कि उसे टंकी मिलने में देर नही लगी। उसने पहले ही सोच लिया था कि लौटते वक्त जीप को वह ऐसे ले जायेगा कि उसे जब्त कर लिया जावे। लौटते वक्त यह सुविधा थी कि उस समय गैस की भरी टंकी होगी और साहब के नाम कटी रसीद भी।

अपनी योजना के अनुसार उसने वैसा ही किया। जब वह लौट रहा था तो थाने के सामने उसे रोका गया। उसने प्रसन्नतापूर्वक जीप रोक दी। जीप जब्त कर ली गई। पूछताछ पर उसने जो जवाब सोचे थे दे दिये। सब

0, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कुछ सुनकर थानेदार ने बड़े रोब से पूछा—"तुम्हारे साहब का सामान है यह इसका क्या सबूत है ?"

उसने तुरन्त लॉग-बुक दिखाई और कहा—"ये देखिए उनके दस्तखत हैं और ये गैस की दुकान की रसीद भी।"

दोनो चीजें देखकर थानेदार को बहुत आश्चर्य हुआ। वह शक की निगाह से नरबद को घूरता रहा। फिर साहब के घर उसने टेलीफोन किया और उनको तुरन्त आ जाने को कहा। फिर नरबद की ओर इशारा कर के हवलदार से कहा—"इसे हवालात में बन्द कर दो।"

नरबद को थानेदार की यह बात समझ में नही आई। उसने थानेदार से कहा "मुझे क्यों बन्द करते हो साहब ? मेरा क्या दोष है।"

"ज्यादा बकवास नही करो नही तो मार-मार कर माँ-बहन याद दिला दूंगा। साले ये तुम्हारी चाल हो सकती है।"—थानेदार ने कहा।

लेकिन मुझे तो जैसा साहब लोग कहते हैं वैसा ही करना पड़ता है।

"अच्छा बेटा साहब कहते हैं कि तुम उन्हे फँसा दो, है ना। अभी तुम्हें पता चलेगा।" थानेदार ने उससे कहा और फिर से हवलदार से कहा—"इसे बन्द कर दो।"

उसको बन्द कर दिया गया। फिर भी उसने सोचा पुलिस तो ऐसा करती ही है। अभी तो जब साहब आयेंगे तब उनको सबक मिलेगा। उसे अपनी लडकी याद आ रही थी। इन्हीं साहबों की वजह से तो वह लंगड़ी हो गई है। पत्नी की हालत दिन-पर-दिन गिरती जा रही थी। वह खुद भी तो कितने दिनो से सो नही पाया था। उसका दिल साहबो के लिए घोर घृणा से भर उठता है इसी घृणा ने तो उससे यह करवाया है और वह हवालात में पहली बार बन्द हुआ है। वह इस बेइज्जती को भी बर्दाश्त कर जायेगा पर साहब को छोड़ेगा

नहीं। वह साहब के इन्तजार में हवालात की कोठरी में तेजी से टहलने लगा। कोठरी के सामने ही थानेदार की टेबिल थी।

थोड़ी देर बाद उसके साहब पसीना पोंछते हुए आये और घबराये हुये थानेदार से पूछा—"क्या बात हो गई ? क्या नरवद ने कोई एक्सीडेन्ड कर दिया है।"

थानेदार ने बड़े अदब से साहब से हाथ मिलाया फिर कहा—"अरे नहीं साहब ऐसी कोई बात नहीं। शायद आपको मालूम नहीं कि आजकल ऊपरी आदेश है कि सरकारी गाड़ियों का निजी इस्तेमाल करने पर दण्डित किया जायेगा। आपकी गाड़ी में आपकी गैस की टकी रखी है और आपका ड्राइवर बता रहा है कि आपने ही उसे भेजा था।" साहब गुमसुम थे। वे और ज्यादा घबरा गये थे, जबकि थानेदार ने अब तक उनसे अपराधियों जैसा व्यवहार नहीं किया था।

नरवद बडी अधीरता से इन्तजार कर रहा था कि साहब के खिलाफ केस बनेगा। पर वह देख रहा था थानेदार ने उनकी बडी आवभगत की थी और तब तक तो साहब के लिए चाय भी आ चुकी थी। थानेदार बडी आत्मीयता से उनसे बात कर रहा था। यह सब देखने पर उसे लगा हवालात की छत उसके सिर पर गिर पड़ेगी। उसे चक्कर से आने लगे। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि सारे सबूत होने पर भी साहब के खिलाफ केस क्यों नहीं बनाया जा रहा है ? तभी उसने सुना, थानेदार साहब से कह रहा था—"साहब बाकी तो ये खाना-पूर्ति की बातें हैं, पर आप लोगों को हमारी रोजी-रोटी का भी ख्याल करना चाहिये। आप लोग कम से कम प्राइवेट कामों के लिए तो लॉग बुक न भरा करें। पता नहीं आप लोग कैसे यह कर पाते है।"

यह सुनकर साहब आश्चर्य चकित हुये—क्या कहा यह कैसे हो सकता है ? उन्होंने थानेदार से कहा।

(प्रस्थान कविता संग्रह : 1984)
गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

थानेदार ने लॉग बुक दिखाते हुए कहा—ये आपके ही दस्तखत है न ?

बड़ी मुश्किल से उन्होने कहा—"हाँ"। अब पहली बार उन्होने नरवद पर नजर डाली। उनकी आँखो से आग निकल रही थी। उन्होने चिल्लाकर कहा—कमीने तेरी यह मजाल जहाँ खाता है वही छेद करता है। मैं तुझे देख लूँगा।

थानेदार ने जब यह सुना तो उसने भी नरवद को घूरकर देखा और साहब से कहा—"ये लोग आस्तीन के साँप होते है इन पर कभी भरोसा मत करिये। मैं विवश हूँ नहीं तो मैं इसे समझा देता।" फिर वह बड़ी देर तक साहब को समझाता रहा।

नरवद तब तक बहुत घबरा गया था। जो कुछ उसने सोचा था सब कुछ उसके विपरीत हो रहा था। एक बार फिर वह निराशा के गिरफ्त मे आ गया था।

थानेदार से साहब ने पूछा—"अब मुझे क्या करना चाहिये ?" वे तब तक संयत हो गये थे।

थानेदार ने तुरन्त कहा—"साहब करना-वरना क्या है। ऐसी गल्तियाँ मत करिये। चोर के हाथ मे चाबी देकर आजकल उस पर विश्वास नही किया जा सकता। अभी तो मामला मुझ तक ही सीमित है। लेकिन हो सकता था कोई बडा अधिकारी होता तो मामला उल्टा हो गया होता। हम भी आपके लिये कुछ न कर पाते।"

साहब एक बार फिर नरबद को गालियाँ देने वाले थे कि थानेदार ने कहा—"चलिये हटाइये। आप तो निश्चिन्त होकर चाय पीजिये।"

साहब के चेहरे की घबराहट ख़त्म हो गई। उन्होने थानेदार से कहा—आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं आपका यह एहसान कभी नही भूलूँगा बताइये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

तब तक यह सब देखकर नरबद की आँखें खुल गई थीं। उसे अपनी हड़-बड़ी पर पछतावा हो रहा था। उसे उस्ताद याद आ रहे थे। उनकी तमाम बातें याद आ रही थीं। और उसे लग रहा था कि उसने जो कुछ उनके साथ किया है इसलिये वे लोग अब उससे कभी बात नहीं करेंगे। और हो सकता है मुझ पर हँसेंगे। वह रह-रह कर खुद को ही गालियाँ दे रहा था। उसको ऐसा लग रहा था कि वह रो पड़ेगा।

सामने थानेदार उसके साहब से कह रहा था—"अब आप लोग तो बड़े साहब हैं। मेरा घर बन रहा है यदि थोड़ा बहुत सीमेंट…… ……"

थानेदार इतना ही कह पाया था कि साहब ने कहा—"आप कैसी बातें करते हैं। मेरी इज्जत आपने बचाई है। कल ही जितनी सीमेंट आपको चाहिये लीजिये। अभी नेपियर टाउन में डिपार्टमेंट की नई बिल्डिंग बन रही है।" फिर कुछ याद करके उन्होंने नरबद की ओर देखा और फुसफुसाकर कर बातें करने लगे।

नरबद ने देखा थानेदार मुस्कुरा रहा था। वे दोनों इतने सामान्य हो गये थे कि लग रहा था पुराने दोस्त हैं। पर वह अपने आप को बिल्कुल अकेला महसूस कर रहा था।

तभी एक भद्दी सी गाली थानेदार ने नरबद के लिए निकाली और हवल-दार से कहा—"इसे खोल दो।"

हवलदार ने तुरन्त उसे हवालात से निकाला। जब तक साहब जाने के लिए तैयार हो गये थे। थानेदार ने उन्हें जीप की जब्त की हुई चाबी दी और सीमेंट की बात को एक बार फिर दोहराया।

अब नरबद साहब के बिल्कुल सामने था। उन्होंने उसे घूर कर देखा। नरबद ने भी घृणा से उन्हें देखा। साहब ने थानेदार से हाथ मिलाया और

बाहर चले आए। जब नरबद भी उनके पीछे-पीछे बाहर पहुँचा तो उन्होंने उससे कहा—"सुनो कमीने तुमने जो आज ये हरकत की है उसका अंजाम तुम्हें आज ही दिखाऊँगा। तुम्हारा दूर कहीं ट्रांसफर पहले करूँगा फिर बाद में तुम्हारी पुरानी गलतियों को देखूँगा। अपने आप को बहुत तेज समझते हो न। सब घुसड़ जायेगी बातें जब यहाँ से दूर मरोगे।"

यह सुनकर नरबद को पहली बार महसूस हुआ कि जितनी आसानी की उसने आशा की थी वैसा नहीं है। इसके साथ ही एक तेज घबराहट में वह डूब गया कि अब तो इस शहर से जाना होगा। परदेश में बसने के कितने लफड़े होंगे और अब तो कोई भी साथी नहीं है। उसे लग रहा था कि उससे बड़ी गलती हो गई है। उसने साहब से एक बार प्रार्थना करने की सोची। उसने याचना सहित कहा—"साहब ऐसा मत करिये।"

उसे गिड़गिडाते देखकर साहब का हौसला बढ़ा। उन्होने—"क्यों ? अब क्यो गिडगिड़ा रहे हो। बड़ी नेतागिरी जानते हो न। लॉग-बुक भरो और मुझे बन्द कराओ तब तुम्हारा ट्रासफर मैं नहीं कर पाऊँगा। तुमने तो मेरा हमेशा के लिए काम तमाम कर दिया था। मैं तो सिर्फ ट्रांसफर कर रहा हूँ। पेट भर खाना तो तुम्हें वहाँ भी मिलेगा। और तुम लोगों को क्या चाहिये ?"

अपने किये की असफलता के बाद भी नरबद का गुस्सा अन्दर फिर भी था साहब की ये बातें सुनकर उसने खुद को गिड़गिड़ाने से रोक लिया। तभी उसने देखा सड़क पर उस्ताद और तमाम ड्राइवर तेजी से उसी की ओर आ रहे थे। उन लोगो को देख कर उसका दिल खुशी से भर आया। साहब अभी तक प्रश्नवाचक मुद्रा में उसकी ओर देखते खड़े थे। उसने उनको कोई जवाब नहीं दिया और उस्ताद और उनके साथियो की ओर बढ़ते हुये सोचा कि वह उनके साथ बैठकर तय करेगा कि हमें क्या चाहिये।

□□

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
..., सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003